चौखम्बा सुरभारती ग्रन्थमाला
२८

# प्रस्तावरत्नाकरः

[ उच्चतरमाध्यमिक ( इण्टर )-विशारद-स्नातक-शास्त्रिपरीक्षासु निर्धारितविविधनिबन्धविषयसंवलितः ]

निबन्धकारः—
डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी
साहित्य-आयुर्वेद-आचार्य
एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० एस-सी० ए-बार०





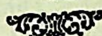
चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन
वाराणसी

SHRI JAGADGURU VISHWARADHYA JNANAMANDIR
(LIBRARY)
JANGAMAWADIMATH, VARANASI

❁ ❁ ❁ ❁ ❁

Please return this volume on or before the date last stamped
Overdue volume will be charged 1/- per day.

| | | |
|---|---|---|
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |
| | | |



# प्रस्तावरत्नाकरः

[ उच्चतरमाध्यमिक ( इण्टर )–विशारद–स्नातक–शास्त्रिपरीक्षासु निर्धारितविविधनिबन्धविषयसंवलितः ]

निबन्धकारः—

## डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी

साहित्य-आयुर्वेद-आचार्यः

एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० एस-सी० ए-वाइ०



चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

वाराणसी

प्रकाशक—



चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

( भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक )

के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पोस्ट बाक्स नं० १२९

वाराणसी २२१००१





तृतीय संस्करण १९८२

मूल्य ७-५०

अन्य प्राप्तिस्थान—

चौखम्बा विद्याभवन

( भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक )

चौक ( बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे )

पोस्ट बाक्स नं० ६९

वाराणसी २२१००१



मुद्रक—

श्रीजी मुद्रणालय

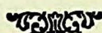
वाराणसी

THE



**CHAUKHAMBA SURBHARATI GRANTHAMALA**

**24**



# PRASTĀVARATNĀKARA

*( A Collection of standard essays useful for various examinations )*

*By*

Dr. Brahmananda Tripathi

**Sahityacharya, Ayurvedacharya**

M. A., Ph. D., D. Sc. Ay.



CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN

VARANASI

(*Oriental Booksellers & Publishers*)
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 129
VARANASI 221001

Third Edition
1982

*Also can be had of*
CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN
(*Oriental Booksellers & Publishers*)
CHOWK ( Behind The Benares State Bank Building )
Post Box No. 69
VARANASI 221001

# शुभाशंसनम्

•

श्रीमता पण्डितप्रवरेण डाक्टर-ब्रह्मानन्दत्रिपाठिना विविधविषय-वर्चामनोरमः, सरस-सरल-सुरभारतीसमुपनिबद्धः प्रस्तावरत्नाकरो नाम गद्यसन्दर्भः प्राकाश्यपदवीमुपनीतः। सोऽयं गीर्वाणवाणीनैपुणीमधिजग्मुषां शेमुषीजुषां विदुषां, साम्प्रतं विविधासु परीक्षासु समधीयानानां संस्कृत-भाषाव्यावहारिककौशलमभीप्सतां विद्यार्थिनाञ्च महते स्थेयसे वैदग्ध्य-मूलाय श्रेयसे च कल्पिष्यते।

सर्वेऽपि निबन्धाश्छात्राणां दैनन्दिनेषु कार्येषु बोधप्रदाः, भाषाऽपि सुतरां हृदयग्राहिणीति, लेखकस्य तदीयलेखनकलायाश्च यथोत्तरं प्रचार-प्रसारं, सुन्दरतरमुदर्कं, निरन्तरं सुयशोवृद्धिञ्च भगवतो भवाद् भावयामि, इति।

बटुकनाथशास्त्री खिस्ते
आचार्यः अध्यक्षश्च साहित्यविभागस्य
सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय
वाराणसी।

चैत्रशुक्लप्रतिपदि-
२०३४ वि० संवति,

॥ श्री बदरीशो विजयते ॥

## श्रीमत् पण्डित नारायणदत्त शास्त्री

प्रधानाचार्य—राजकीय कालेज, छिनका, चमोली गढ़वाल

की

### * शुभ-सम्मति *

डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी कृत प्रस्तावरत्नाकर निबन्ध-ग्रन्थ देखकर हार्दिक प्रसन्नता हुई। यह सचमुच प्रस्ताव ( निबन्ध ) रूपी रत्नों का आकर ( खजाना ) है। इसकी विशेषता यह है कि इसमें सर्वथा स्वतन्त्र एवं मौलिक विचारों का संचार हुआ है।

भाषा की दृष्टि से सरलता, सरसता और भावप्रवणता की कहीं कमी नहीं है। इसमें सूक्तियों का सन्निवेश आपके विशेष चिन्तन एवं अन्वेषण के फलस्वरूप हुआ है, ऐसा प्रतीत होता है।

विषयों का चयन भी विभिन्न परीक्षाओं की दृष्टि से अत्यन्त कुशलता के साथ किया गया है। जिसके कारण परीक्षोपयोगी कोई विषय इसमें छूटने नहीं पाया है।

प्रस्तुत प्रस्तावरत्नाकर में एक विशेषता और देखने को मिली, वह यह है कि प्रायः प्रत्येक निबन्ध के अन्त में आप द्वारा रचित पद्य सम्पूर्ण निबन्ध के सारांश के रूप में विराजमान हैं। जो अन्य निबन्ध की पुस्तकों में दुर्लभ हैं।

भूमिका में दिये महत्वपूर्ण निर्देशों तथा लेखन कौशल से यह एक ही पुस्तक इण्टर से लेकर बी० ए० स्तर तक की समस्त परीक्षाओं में पूर्ण सहायक सिद्ध होगी, ऐसा मेरा विश्वास है।

अन्त में ग्रन्थ तथा ग्रन्थकार के उत्तरोत्तर अभ्युदय की कामना करता हूँ।



# किञ्चित् प्रास्ताविकम्

अयि भो! गद्यगहनसञ्चरणलब्धपाटवाः सङ्ख्यावन्तः पञ्चाननाः! सुविदितमेव तत्रभवतां भवतां विविधासु काव्यविधासु गद्यलेखनसरणिरप्यन्यतमैव, किमुत काव्यरचनापेक्षयाऽपि गरीयसी। यतो हि प्रसिद्धेयं सूक्तिर्यद्—'गद्यं कवीनां निकषं वदन्ति' इति। अतो विद्वच्चरणचञ्चरीकस्य मादृशस्य गद्यलेखने प्रवृत्तिः नूनं हास्याय भवेदिति मनसा चिन्तयन्नपि प्रतिदिनं छात्राणां विनयोपेताः प्रार्थना आकर्ण्याऽऽकर्ण्य, अनवलोक्य च सुतरां छात्राणां परीक्षोपयोगिनो निबन्धान्, ये च समुपलभ्यन्ते निबन्धग्रन्थास्तेषु केचन व्याकरणग्रन्थिग्रथिताः, दीर्घदीर्घतरसमाससमाश्लिष्टकलेवराः, पाञ्चालीरीतिनीतिजुष्टाः नेत्रपथाग्रेसरतां यान्तिस्म। तानवलोक्य एव पाश्चात्यसंस्कृति-ज्ञान-विज्ञानप्रभाविताः सुकुमारमतयश्छात्रा बिभ्यति। 'हंहो! सुचिरम् अभ्यस्यन्तोऽपि वयम् एतान् निबन्धसिन्धून् कथङ्कारं सन्तरिष्यामः, कथञ्च एभिः परीक्षासु मनोभिलषितां सफलतां क्रोडीकरिष्याम इति, कथयन्ति संलपन्ति च छात्राः परस्परम्।

एतद् वारं वारं, दर्शं दर्शं, श्रावं श्रावं, ध्यायं ध्यायंश्च मम मनसि विचारसम्भाराः सहसा प्रस्फुरन्तिस्म प्रत्यग्रनिबन्धलेखनाय। तदद्य वाराणसेयचौखम्बाविद्याभवनाख्यप्राचीनतमसंस्कृतवाङ्मयसंवर्द्धनबद्धपरिकरसस्थानस्य सुप्रसिद्धैरधिकारिभिः श्रीमद्वल्लभदासगुप्त-महोदयैः सादरं सम्प्रार्थ्य प्रेरितोऽयञ्जनस्तदनु सरसया सरलया च देवभाषयाऽऽबद्धान् नातिदीर्घान् नातिलघून् निबन्धान् लेखने प्रवृत्तः। एतेषाम्प्रयोगः उच्चतरमाध्यमिक ( इण्टर )–विशारद–माध्यमा–स्नातक–( बी० ए० ) स्तरीयासु समस्तास्वन्यासु च परीक्षासु छात्राणां सौकर्याय साफल्याय च प्रभवेदतएव अस्मिन् 'प्रस्तावरत्नाकरे' सुरसरस्वत्याः सकलजनचित्तावर्जनकलासामर्थ्यं, परमोदारभव्यभावविभवसनाथताञ्च अक्षिलक्ष्यीकृत्य शब्दानां प्रयोगा विहिताः। ग्रन्थान्ते बहुविधनिबन्धोपयोगिसुभाषितपद्यानां सूक्तीनाञ्च सङ्ग्रहः सर्वेषां हितकामनया मनसस्तोषणाय च संयोजितः।

यद्यपि सन्धिः शब्दसन्धानाय कल्पते, तथापि 'स विवक्षामपेक्षते' इति नियमांशमाश्रित्य यत्र यत्र क्लिष्टताऽनुभूता तत्र-तत्र सन्धिनियमशैथिल्यमाचरितम्। एतादृशी एव स्थितिः समासप्रयोगस्याऽपि, न तत्र किमपि नूत्नं वक्तव्यमवशिष्यते। किमधिकमत्र सर्वात्मना परीक्षोपयोगिविषयान् सुचिरं विचार्य प्रसन्नगम्भीरया पुष्कलसामग्रीसनाथया च भाषया समृद्धांस्तांस्तान् निबन्धान् निबद्ध्य सुरभारतीसमाराधनसावधानमनसां विदुषां पाठकानाञ्च पुरतः सादरं सोल्लासं सस्नेहञ्च प्राभृतीक्रियते प्रस्तावरत्नाकरोऽयम्।

प्रस्तुतेऽस्मिन् ग्रन्थे मूलतः षष्टिनिबन्धाः सन्ति किन्तु पर्यायक्रमेण प्रदत्ता शीर्षकानां सङ्ख्या शताधिकं वर्तते। एनया विपुलनिबन्ध-शीर्षकसङ्ख्यया यथासम्भवं ते सर्वेऽपि विषया अत्र निबन्धरूपेण निबद्धाः सन्ति येषामपेक्षां छात्रवर्गः प्रतिदिनं निबन्धलेखनाय करोति।

अत्र प्रारिप्सूणां छात्राणां सरलतया निबन्धलेखोपयोगिनी सामग्री बुद्धिगम्या स्यादिति हेतोः हिन्दीभाषायां निर्देशरूपेण निबद्धाऽस्ति। एनां सुस्थिरेण चेतसा अधीत्य अभ्यस्य प्रयुज्य च निबन्धलेखनजिज्ञासुः परीक्षार्थी पर्याप्तं साहाय्यं लप्स्यत इति मे द्रढीयान् विश्वासः।

अयं हि 'प्रस्तावरत्नाकरः' रत्नाकरवद् अन्तःस्थितनिबन्धमुक्तासनाथः पाठकानां पुरतः प्रस्तुतः। अत्र स्वकीयाऽभिधेयनिर्वाहस्य कियती योग्यता-ऽस्ति, विषयस्याऽस्य निर्णयाय प्रबन्धरचनाधौरेया धीधना एव सक्षमाः। तथाऽपि आशासे यद् गुणगृह्या विद्वांसोऽध्यापकाश्छात्राश्च सममेव एनमूरीकृत्य लेखकस्य प्रयासान् सफलयिष्यन्तीति।

विद्वद्विधेयः—

ब्रह्मानन्दत्रिपाठी

# निबन्धोपयोगी प्रमुख निर्देश

लेखक निवन्धके माध्यम से विभिन्न शीर्षकों के अनुसार विशिष्ट शैली द्वारा अपने ज्ञान को निज भाषा में व्यक्त करता है। यदि निबन्ध में लेखक के व्यक्तित्व की छाप दिखलाई नहीं देती तो वह दूसरे का अनुकरण मात्र होता है। निबन्ध में विचारों का सन्निवेश सरल, आकर्षक तथा क्रमबद्ध होना चाहिये। निबन्ध गद्य साहित्य है, प्राचीन आलोचकों ने इसको कवियों की कसौटी कहा है। निबन्ध की उत्तमता दो बातों पर निर्भर करती है। एक तो निबन्ध की सामग्री उत्तम हो दूसरा लेखककी शैली विपुल शब्दसामर्थ्य वाली एवं रुचिकर हो।

निवन्धसामग्री को हम तीन भागों में विभाजित कर सकते हैं—१. स्वाध्याय, २. सत्संग, ३. पर्यटन। १. स्वाध्याय के द्वारा इसे विविध विषयों का तथा उससे सम्बन्धित मत-मतान्तरों का ज्ञान होता है और उससे भाषा में सरसता, प्रौढ़ता आदि गुण आ जाते हैं। उक्त गुणों की प्राप्ति हमें उत्तम कोटि के साहित्य के अध्ययन से प्राप्त हो सकती है, अन्यथा नहीं। अतः निम्नकोटि के स्वाध्याय से सावधान रहें। २. सत्संग—यह साधन हमारे चरित्रनिर्माण के लिए अनुपम है। इससे हमें प्राचीन इतिहास से सम्बन्धित अनेक दुर्लभ विषयों का ज्ञान प्राप्त होता है, जो स्वाध्याय से भी सर्वथा सम्भव नहीं है। ३. पर्यटन—देश-विदेश का भ्रमण हमें भौगोलिक, ऐतिहासिक तथा प्राकृतिक घटनाओं एवं दृश्यों से सुपरिचित कराता है। इसमें हमारी ज्ञानेन्द्रियाँ आंख, कान आदि पूर्ण-रूपेण सहायक होती हैं। जिसने समुद्र, हिमालय आदि को स्वयं न देखा हो वह व्यक्ति ऐसे विषयों के वर्णन में परमुखापेक्षी ही बना रहेगा और उसके द्वारा लिखे हुए निबन्ध मौलिक नहीं हो सकते।

निबन्धों का विभाजन—१. प्रस्तावना, २. विवेचन, ३. उपसंहार।

प्रस्तावना—निबन्ध के शीर्षक सम्बन्धी चर्चा ही प्रस्तावना, भुमिका, पूर्व-पीठिका, आमुख अथवा प्रतिज्ञा है। इसको ऐसे वाक्यों द्वारा प्रारम्भ करना चाहिये जो आकर्षक तथा सारगर्भित हों। इसमें प्राचीन एवं नवीन घटनाओं को उपदेश रूप में उद्धृत किया जा सकता है। इसी अंश को पढ़ने से पाठक को आगे की ओर पढ़ने की अभिरुचि होती है। इसका आरम्भ शीर्षक के अनुसार करें। यथा–निबन्ध के विषयकी परिभाषा से, प्राकृतिक दृश्यों के वर्णन से ऐति-हासिक घटनाओं से, लोकोक्तियों से, किंवदन्ती के माध्यम से और वर्तमान स्थिति की चर्चा आदि से।

**विवेचन**—उपर्युक्त विषय का सहेतुक वाक्यों द्वारा समर्थन ही विवेचन अथवा उपपत्ति है। यह अंश निबन्ध का मध्य भाग होता है। इसमें निबन्ध के कथ्य को प्रधानता दी जाती है। इस पर लेखक को योग्यता निर्भर करती है कि वह अपने लेखकी भूमिका को सफलतापूर्वक निभा सकता है या नहीं। इस सम्बन्ध में प्रस्तुत तथ्यों को ओर ध्यान दें—सर्वप्रथम विषय को दृष्टि में रखते हुए उसकी रूपरेखा प्रस्तुत कर लेनी चाहिये। प्रायः एक प्रकार के विचारों को एक ही पैराग्राफ (परिच्छेद) में रखना चाहिये। लेख को प्रभावशाली बनाने के लिये सम्बन्धित प्रसिद्ध उद्धरणों, दृष्टान्तों, लोकोक्तियों तथा मुहावरों का उल्लेख करना चाहिये। विचार शृंखलाबद्ध हों। अपने विचारों का खण्डन स्वयं न करें। अप्रासंगिक विषय से निबन्ध के लक्ष्य को आघात न पहुँचायें। इसमें प्रस्तुत विषय की लाभ-हानियाँ, धार्मिक, आर्थिक, सामाजिक तथा वैज्ञानिक जो उसमें उपयुक्त हो उसका महत्त्व दिखाया जाता है। इस सम्बन्ध में विद्वानों की सम्मतियां उदधरण के रूप में उदधृत को जानी चाहिये और ऐसे प्रमाणों को भी उदधृत करना चाहिये, जिनसे प्रस्तुत विषय की सम्पुष्टि हो सके। प्रसंगानुसार कहीं-कहीं अवतारों, ऋषियों, राजाओं, विद्वानों, कवियों आदि के जीवनचरित भी निबन्ध के कलेवर की श्रीवृद्धि में सहायक होते हैं।

**उपसंहार**—इस अंश में निबन्ध की समाप्ति होती है। अतः हमारे कथ्य का परिसमापन कलापूर्ण ढंग से होना चाहिए, ऐसा न हो कि हम जो कहना चाहते थे वह नहीं कह सके और जो कह आये थे उसकी पुनरावृत्ति हो जाय। धार्मिक एवं सामाजिक निबन्धों के अन्त में उपदेशों का समावेश कर देना चाहिये। यह भी एक विधा है कि पाठकों के विवेक पर निबन्ध को सफलता तथा असफलता का निर्णय छोड़ दिया जाता है। यथा—"इसका निर्णय पाठक स्वयं करें "आदि वाक्यों से अथवा अपना अभिमत स्वयं प्रकट करके तथा प्रशंसनीय विषयों की प्रशंसा करके और निन्दनीय विषयों की निन्दा करके, करना चाहिए।

**निबन्धों का वर्गीकरण**—१. वर्णनात्मक, २. विवरणात्मक,
३. विचारात्मक।

**१. वर्णनात्मक**—बीज रूप में निबन्धों का सांकेतिक रूप हमको वैदिक साहित्य में उपलब्ध होता है। यथा-यजुर्वेद के पुरुषसूक्त में विराट्पुरुष का वर्णन, इसी प्रकार यज्ञ, धर्म, सत्य, अहिंसा आदि आधिदैविक, आधिभौतिक, आध्यात्मिक वर्णन भी वेदों में सुलभ हैं। आँख-कान आदि ज्ञानेन्द्रियों की सहा-

यता से जिन विषयों का हमें ज्ञान प्राप्त होता है उनका अपनी भाषा में वर्णन करना 'वर्णनात्मक' निबन्धों का प्रमुख आधार है। ऐसे निबन्धों में देश-विदेश, झरना, नदी, समुद्र, पर्वत, प्राणी, वृक्ष, लता वैज्ञानिक उपलब्धियाँ ( बिजली, रेल, तार, टेलीफोन, रेडियो, जहाज, राकेट आदि ), खेल, यात्रा, त्यौहार, मेला प्रदर्शनी प्रभृति का समावेश किया जाता है।

२. विवरणात्मक—इनको कथात्मक तथा परिचयात्मक भी कहा जाता है। वेदों में यह परम्परा हमें उषा, इन्द्र आदि देवताओं के परिचयात्मक वर्णन में प्राप्त होती है। इसके अन्तर्गत प्रमुख घटनाओं, कथाओं, महापुरुषों ( राजा कवि, योधा आदि ) के जीवन वृत्तान्तों का वर्णन आता है। इस प्रकार से वर्णन ब्राह्मण ग्रन्थों तथा उपनिषदों में भी पाये जाते हैं। रामायण, महाभारत आदि ग्रन्थों में भगवत् भक्ति, ब्रह्मचर्य, सदाचार, परोपकार, सत्य अहिंसा आदि के अनेकानेक उद्धरण होते हैं। लक्षणग्रन्थों ने तो महाकाव्यों के निर्माण से लिये यह अनिवार्य कर दिया है कि उनमें सूर्य, चन्द्र प्रातः, सायम्, ऋतु, नगर, पर्वत, वन, नदी, नायक, नायिका आदि का वर्णन अवश्य होना चाहिये।

३. विचारात्मक—ऐसे निबन्धों को व्याख्यात्मक अथवा भावात्मक भी कहा जाता है। इनमें चिन्ता, भय, शोक, क्रोध, ईर्ष्या, दम्भ, आशा, निराशा, परोपकार, देश प्रेम आदि विषयों का समावेश किया जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थ में दिये गये कतिपय शीर्षकों तक ही निबन्ध सीमित नहीं हैं। आवश्यकतानुसार छोटी से छोटी वस्तु से लेकर परब्रह्म तक निबन्ध का विषय हो सकता है।

**निबन्ध के आवश्यक तत्व—**

क—व्याकरण से नियमानुसार शुद्ध भाषा का प्रयोग।

ख—ग्राम्यता आदि दोषों से रहित सरल, सरस, प्रवाहमय, साहित्यिक-भाषा का प्रयोग।

ग—जिस भाषा में निबन्ध प्रारम्भ हो यथासम्भव अन्त तक उसी भाषा का प्रयोग।

घ—उद्धरणों से अतिरिक्त निबन्ध में अन्य भाषाओं का सम्मिश्रण प्रमुख दोष है।

ङ—अधिकांश छोटे-छोटे वाक्यों का प्रयोग किया जाय।

च—शब्दालंकारों के प्रयोग द्वारा उत्पन्न निरर्थक शब्दाडम्बर का निषेध।

छ—विषय के अनुकूल भाव तथा शैली का परिवर्तन आवश्यक है।

वर्णन प्रकार का दिग्दर्शन—

नदी वर्णन में—कहाँ से प्रादुर्भाव हुआ है और कहाँ जाकर समाप्त हुई। तटवर्ती नगर, व्यापारिक उपयोग, धार्मिक महत्व, सिंचाई का प्रयोग तथा हानि।

नगर वर्णन में—नगर की भौगोलिक परिधि, किस नदी तट पर स्थित है, नाम की सार्थकता, जनसंख्या, प्रसिद्धवस्तु, राजमार्ग, बाजार, यातायात, दर्शनीयस्थान आदि।

संस्था वर्णन में—संस्था नाम, स्थापन तिथि, संस्थापक परिचय, कर्मचारियों का परिचय, क्रमिक विकास। यदि शिक्षण संस्था है तो—अध्यापक, अध्यापन, श्रेणियां, छात्रसंख्या, व्यवस्था, प्रधानाचार्य की स्थिति, प्रबन्ध, परीक्षापरिणाम, मनोविनोद के साधन, छात्रों का चरित्र, शुभकामना आदि।

मेला-महोत्सवादि वर्णन में—कब कहाँ होता है, कब से चला है, किस जाति, धर्म के लोग मानते हैं, इतिहास से सम्बन्ध, इसमें क्या किया जाता है, व्यावहारिक तथा वैज्ञानिक महत्व, भलाइयां अथवा बुराइयां, रोकने या सुधारने के उपाय आदि।

चरितात्मक निबन्धों के वर्णन में—चरितनायक का आविर्भाव, देश, काल, परिस्थिति, वंशपरिचय, पालन-पोषण, विद्योपार्जन, विवाह, कार्यक्षेत्र, सन्तति, जीवन की विशिष्ट घटनायें, कृतियां, गुण, मान, प्रतिष्ठा, स्वभाव ( नैतिक, धार्मिक, अवस्था ), परलोक गमन ( यदि हुआ हो तो )।

## लेखोपयोगी चिह्न

| हिन्दी नाम | संस्कृत नाम | चिह्न |
|---|---|---|
| अल्पविराम चिह्न | अवान्तरविरामचिह्नम् | , |
| अर्ध " " | अर्ध " " | ; |
| पूर्ण " " | पूर्ण " " | । |
| प्रश्नबोधक " | प्रश्नबोधक " | ? |
| विस्मयादि " | सम्बोधनखेदाश्चर्य " | ! |
| उद्धरण " | उद्धरणबोधक " | " " |
| योजक " | योजक " | — |
| पर्यायसंयोग " | पर्यायसंयोग " | = |
| निर्देश " | निर्देशक " | :— |

| | | | | |
|---|---|---|---|---|
| कोष्ठक: | " | तदर्थप्रदर्शक | " | [{( )}] |
| त्रुटि | " | त्रुटिपूर्ति | " | ‸ |
| तारक | " | स्मारक | " | + † ‡ ❀ |

## विराम आदि चिह्नों के प्रयोग

अल्प विराम—राम, लक्ष्मण और भरत में अत्यन्त प्रेम था।

अर्धविराम—चिड़ियों का चहचहाना; वनपशुओं का विचरण; मुनियों के आश्रम; यहाँ की शोभा है।

पूर्णविराम—ऋतुराज वसन्त सबको आनन्दित करता है।

प्रश्नबोधक—तीर्थराज प्रयाग में कौन-कौन नदियाँ बहती हैं ?।

विस्मयादि बोधक—'हाय ! राम लक्ष्मण सीता मुझे छोड़ कर चले गये !'।

उद्धरण चिह्न—रसखान ने कहा—"जो खग हौं तो बसेरा करौं, मिलि कालिन्दी कूल कदम्ब की डारन"।

योजकचिह्न—माता-पिता के प्रति श्रद्धा और भाई-बहन के प्रति प्रेम करें।

पर्यायसंयोग चिह्न—राम = दशरथ के पुत्र चक्रवर्ती राजा थे।

कोष्टक चिह्न—मघवा ( इन्द्र ) के अस्त्र का नाम वज्र था।

त्रुटि चिह्न—मालवीय जी जवाहरलाल नेहरू को ‸ लिखा। पत्र

तारक चिह्न—महाभारत में वेदव्यास जी की यह प्रतिज्ञा है❀

❀ यदिहास्ति तदन्यत्र यन्नेहास्ति न तत् क्वचित्।

निबन्धों को कैसे लिखना चाहिये, किस प्रकार की विषयवस्तु का उनमें सन्निवेश करना चाहिये, यदि छात्र इन विषयों का दिग्दर्शन 'निबन्धोपयोगी-प्रमुख निर्देश' में दी गयी सामग्री द्वारा प्राप्त कर लें तो हमें आशा है कि भाषा पर अधिकार रखने वाले छात्र अपने द्वारा लिखे हुए निबन्ध से उच्चश्रेणी के अंक प्राप्त कर सकेंगे।

छात्रों के प्रति लेखक की आत्मानुभूति—हम मान लेते हैं कि आपने देशाटन, शास्त्राध्ययन, सत्सङ्ग और प्रवचनों द्वारा बहुविषयक प्रतिभा अर्जित की है, यदि आपका नित्य प्रति लिखने का अभ्यास नहीं है तो निश्चय ही आप परीक्षा-स्थल में क्रमबद्ध कुछ नहीं लिख सकते, जो लिखेंगे भी वह कुछ का कुछ हो जायगा। अतः हमारा आग्रह है कि प्रतिदिन लिखने का अभ्यास किया करें तभी निबन्ध सामग्री का आप सदुपयोग कर लाभान्वित हो सकेंगे।

—डॉ० ब्रह्मानन्द त्रिपाठी

## ❀ गद्यसाहित्य की क्रमिक उपलब्धि का प्रारूप ❀

कृष्णयजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता, काठक संहिता और मैत्रायणी-संहिता आदि में।

अथर्ववेद का छठा भाग गद्यात्मक है।

ब्राह्मणग्रन्थों में गद्य की सत्ता है।

आरण्यकग्रन्थों में गद्य का सद्भाव है।

प्राचीन उपनिषद् गद्यबद्ध हैं।

दर्शनग्रन्थों के सिद्धान्त विवेचात्मक अंश गद्यमय हैं।

वैद्यकग्रन्थों ( चरकसंहिता, सुश्रुतसंहिता आदि ) के प्रमुख स्थलों में गद्य के दर्शन होते हैं।

अलंकारशास्त्र में भामह ने (काव्यालंकार में) गद्य का स्वागत किया है।



## प्राचीन-गद्यकार

१. सुबन्धु–समय—६०० ई० के आसपास।

ग्रन्थ—वासवदत्ता।

सत्कवितास्तुति—

अविवितगुणापि सत्कविभणितिः कर्णेषु वमति मधुधाराम्।
अनधिगतपरिमलापि हि हरति दृशं मालतीमाला॥

प्रसन्नश्लेष—

विषधरतोऽप्यतिविषमः खल इति न मृषा वदन्ति विद्वांसः।
यदयं नकुलद्वेषी स कुलद्वेषी पुनः पिशुनः॥

२. बाणभट्ट—समय—६३०–६४० ई० तक ।

ग्रन्थ—१. मुकुटताडिक २. हर्षचरित

३. कादम्बरी ४. पद्यकादम्बरी

सुभाषित—

केवलोऽपि स्फुरन् बाणः करोति विमदान् कवीन् ।
किं पुनः क्लृप्तसन्धानः पुलिन्ध्रकृतसन्निधिः ॥

—धनपाल, तिलकमञ्जरी ।

यादृग् गद्यविधौ बाणः पद्यबन्धे न तादृशः ।

—भोज, सरस्वतीकण्ठाभरण ।

जाता शिखण्डिनी प्राग् यथा शिखण्डी तथाऽवगच्छामि ।
प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति ॥

—गोवर्धनाचार्य ।

हृदि लग्नेन बाणेन यन्मन्दोऽपि पदक्रमः ।
भवेत् कविरकुरङ्गाणां चापलं तत्र कारणम् ॥

—त्रिलोचन कवि ।

शब्दार्थयोः समो गुम्फः पाञ्चाली रीतिरिष्यते ।
शिला-भट्टारिका-वाचि बाणोक्तिषु च सा यदि ॥

—राजशेखर ।

रुचिर-स्वर-वर्ण-पदा रसभाववती जगन्मनो हरति ।
सा किं तरुणी ? नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य ॥

—धर्मदास ।

३. दण्डी—समय—६५० ई० से पश्चात् ।

ग्रन्थ—१. काव्यादर्श २. अवन्तिसुन्दरीकथा,

३. दशकुमारचरित ।

सुभाषित—

त्रयोऽग्नयस्त्रयो देवास्त्रयो वेदास्त्रयो गुणाः ।
त्रयो दण्डिप्रबन्धाश्च त्रिषु लोकेषु विश्रुताः ॥

—राजशेखर ।

जाते जगति वाल्मीकौ कविरित्यभिधाऽभवत् ।
कवी इति ततो व्यासे कवयस्त्वयि दण्डिनि ॥

—आलोचव

४. धनपाल–समय—१० वीं शताब्दी ।
ग्रन्थ—तिलकमञ्जरी ।

५. वादीभसिंह–समय—धनपाल के समसामयिक ।
ग्रन्थ—गद्यचिन्तामणि ।

६. वामनभट्टबाण–समय—१४०३ ई० ।
ग्रन्थ—वेमभूपालचरित या वीरनारायणचरित ।
अन्य ७ रचनायें ।

७. विश्वेश्वरपाण्डेय–समय—१८ वीं शती का पूर्वार्धं ।
ग्रन्थ—मन्दारमञ्जरी । अन्य ११ रचनायें ।

८. अम्बिकादत्तव्यास–समय—१९१५ से १९५७ वि० संवत् तक ।
ग्रन्थ—शिवराज । अन्य अनेक अप्रकाशित रचनायें ।

सुभाषित—

रात्रिर्गमिष्यति भविष्यति सुप्रभातं
भास्वानुदेष्यति हसिष्यति पङ्कजश्रीः ।
इत्थं विचिन्तयति कोषगते द्विरेफे
हा ! हन्त ! हन्त ! नलिनीं गज उज्जहार ॥

—शिवराजविजय

# निबन्ध-सूची

**विषयाः** **पृष्ठाङ्काः**

## विचारात्मकाः

विषया: पृष्ठाङ्क

॥ श्रीः ॥

# प्रस्तावरत्नाकरः

## मङ्गलाचरणम्

निर्विघ्नतां याति जनोऽत्र लोके यदीयनामग्रहणेन सद्यः ।
गणाधिपं तं प्रणिपत्य भक्त्या प्रस्तावरत्नाकरमातनोमि ॥ १ ॥
निबन्धकल्लोलचयैः प्रसर्पन् विद्यार्थिमेघैर्मधुरीकृतः सन् ।
आबालवृद्धं परितोषयंश्च 'प्रस्तावरत्नाकर' एष भाति ॥ २ ॥
श्रीमद् बटुकनाथाऽऽख्य-खिस्तेवंशशिखामणेः ।
गुरोः कृपालवेनाऽयं प्रस्तावस्तन्यते मया ॥ ३ ॥

—:०:—

## वेदोऽखिलो धर्ममूलम्

सुविदितमेव वैदिकवाङ्मयविदां विदुषां यद् "वेदोऽखिलो धर्ममूलम्" इति महामानवेन मनुना सम्पूर्णस्य धर्मस्य मूलत्वेन वेदा एवोपन्यस्ताः । यतोहि सर्वेषां धर्माणां प्रचारकाः स्वं स्वं धर्मं वेदमूलकमेवामनन्ति । धर्मार्थकाममोक्षमेतच्चतुष्टयमपि तन्मूलकमेव इति सुविदितम् । वेदशब्दस्य विवेचनदृष्ट्यापि पूर्वोक्त एव विचारः सम्पुष्टिं याति । तद् यथा-वेद्यन्ते ज्ञायन्ते, लभ्यन्ते वा धर्मादिपुरुषार्था एभिरिति वेदाः । तेषामुल्लेखो यथा-ऋग्यजुःसामाथर्वणनामधेयाः । एतेषाम् अनिष्टपरिहारपुरस्सरमिष्टप्राप्तेः लौकिकम् प्रकारं यो वेदयति स वै वेदः । अतएव महर्षिणा सायणेन कृष्ण-यजुर्वेदीयभाष्यभूमिकायाम् परिभाषारूपमिदं पद्यमुपन्यस्तम्—

प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न विद्यते ।
एतं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता ॥

महर्षिणा स्वामिवर्य्येण दयानन्देनापि स्वकीयायाम् ऋग्वेदभाष्यभूमिकायां स एवार्थः प्रकारान्तरेण प्रमाणीकृतो विलसति । यथा विदन्ति, जानन्ति, विद्यन्ते, भवन्ति सर्वाः सत्यविद्या यैर्येषु वा स वेदः । सर्वमतावलम्बिनः प्राच्याः पाश्चात्याश्च विद्वांस एकमत्या स्वीकुर्वन्ति यद् वेदा अखिलविद्यानाम् आकरभूता विराजन्ते । अतएव एतेषाम् अपौरुषेयत्वं

सुप्रसिद्धम्। किन्तु कालनिर्णयविषये सार्वत्रिकाः सुधियः पृथक्-पृथक् प्रमाणबलमाश्रित्य परस्परं विवदमानाः दृष्टिपथमायान्ति। नाद्यावधि कस्मिन्नपि मते विदुषाम् ऐकमत्यमजनि। इदं सर्वेऽङ्गीकुर्वन्ति यद् वेदा अस्माकं धर्मग्रन्थत्वेन आकरग्रन्थत्वन च विराजन्ते इति, वेदानाश्रित्यैव अस्माकं प्राचीनैर्महर्षिभिः लोकोत्तरं यशः समुपलभ्य निखिलमपि जगत् करामलकीकृतमासीत्। सत्यं वद, धर्मं चर, मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, अतिथिदेवो भव, इत्याद्युपदेशश्रृंखला वेदानामेव चिराज्जागर्ति वसुधातले। यम-नियम-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधिभिः सदाचारस्य स्वस्य धर्मस्य च पालनं कर्त्तव्यमित्यपि वेदा एव सङ्गिरन्ते। न केवलम् आर्यवंशीया भारतीया एव वेदान् प्रणमन्ति अपितु अन्यधर्मावलम्बिनो विजातीया विदेशीया अपि वेदान् तथैव समादृतान् कुर्वन्ति यथा स्वधर्मग्रन्थान्।

इतिहासपुराणाभ्यां वेदं समुपबृंहयेत्।
बिभेत्यल्पश्रुताद् वेदो मामयं प्रहरेदिति॥

पद्यमिदं स्मारयति यत् वेदेषु मन्त्ररूपेण यत् सूत्रीकृतो ज्ञानराशिर्वर्तते तस्य एव विस्तारः स्मृतिषु पुराणेषु इतिहासादिग्रन्थेष्वपि वरीवर्ति न च किमपि नूतनम्। अतः संसारस्य धर्मग्रन्थानाम्मध्ये वेदा एव सनातनाः प्राचीनतमाश्च। चत्वारो वेदाः तेषां केचनोपवेदत्वेनापि प्रथितास्तेषां नामानि-आयुर्वेदः, धनुर्वेदः, गान्धर्ववेदः, अर्थशास्त्रञ्चेत्यादयः सुप्रसिद्धाः वेदाङ्गत्वेन विख्याताः-शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषञ्च। अथोपाङ्गानि-पुराणानि, न्यायशास्त्रम्, मीमांसाशास्त्रं, धर्मशास्त्रादीनि च। अतएव भारतीयानां मतमिदं यत् स्वयम्भुवा सृष्ट्यादौ वेदाः समुपदिष्टा ननु तेषां रचना कृता। यथा —

अनादिनिधना नित्या वागुत्सृष्टा स्वयम्भुवा।
नित्या वेदाः समस्ताश्च शाश्वता विष्णुबुद्धिगा॥
सर्गे सर्गेऽमुनैवैत उद्गीयन्ते तथैव च।

अत एतेषां नित्यत्वं ज्ञानविज्ञानानामाकरत्वञ्च सुस्पष्टं सिद्ध्यति। वैदिकः सर्वतन्त्रः स्वतन्त्रो धर्मः। तत्र भगवतः स्वरूपम्। सः अजरः, अमरः, शुद्धः, निर्विकारः, निर्विकल्पः, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञः, कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तुं च समर्थः, स एव सृष्टि-स्थिति-प्रलय-कर्ता च। अतएवोक्तं

यत्—"एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति"। स एव मोक्षप्रदाता, पुनर्जन्मकर्ता च। पुनर्जन्मनि श्रद्दधानाः भारतीयाः यदि स्वसंस्कृतेर्मूलं दिदृक्षवस्तर्हि तस्याः सत्ता वेदेष्वेव।

एकत्र प्रसङ्गे भगवता मनुना सुस्पष्टं प्रतिपादितं यत् "नास्तिको वेदनिन्दकः"। यतोहि वेदा ईश्वरीयज्ञानपूर्णाः। अत एव तत्पदानुवर्तिनो ब्राह्मणारण्यककल्पोपनिषत्प्रभृतिभिः तथा सर्वैश्चास्तिकदर्शनैः निर्विरोधं वेदानामीश्वरीयज्ञानत्वमङ्गीकृतम्। वेदेषु वर्णाश्रमधर्मस्य विचारः समुपलभ्यते, मनुष्याः स्वकर्मादिभेदप्रभावेणैव पञ्चधा विभाजिताः। यथा-ब्राह्मणः, क्षत्रियः, वैश्यः, दासः (शूद्रः), दस्युश्च, अनार्य एव दस्युः। एतेषां जीवनं चतुर्षु आश्रमेषु विभज्य तेषां व्यवस्था विहिता वर्तते। चत्वार आश्रमाः-ब्रह्मचर्य्य-गृहस्थ-वानप्रस्थ-संन्याससंज्ञकाः। एतेषु प्रथमो ब्रह्मचर्य्याश्रमः, मानवीयजीवनस्य मूलाधारः, अनेनैव जीवनं सुखमयं भवति, एतस्य विषये सूक्तिर्विराजते यत्—'ब्रह्मचर्य्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत'। तदनन्तरं गृहस्थाश्रमः यत्र स्त्रीपुंसयोः समानाधिकारो भवति, ततः वानप्रस्थाश्रमः अन्ते च संन्यासाश्रमः, इत्येषो विभागः।

वेदानां वर्णनं स्वल्पकायेऽस्मिन् निबन्धे कथमपि नैव शक्यमिति निश्चित्य कतिपयमुख्यविषयाः सूचीरूपेणैवात्र सूत्रिताः, वेदेषु राष्ट्रभावनायाः समादरो विलोक्यते, आत्मनस्तोषाय परेषां मांसभक्षणनिषेधः, द्यूतस्यैव भेदरूपाम् अक्षक्रीडां निषिध्य कृषिकर्मणः स्तवनमुपलभ्यते। तद्यथा—"अक्षैर्मादीव्यः कृषिमित् कृषस्व" इति ऋक्। द्यूते पराजितस्य पुरुषस्य दशाया उल्लेखः—

जाया तप्यते कितवस्य हीना माता पुत्रस्य चरतः क्व स्वित्।
ऋणा वा बिभ्यद्धनमिच्छमानोऽन्येषामस्तमुपनक्तमेति॥ ऋक्॥

एवम्प्रकारका बहुविधा उपदेशा वेदेषु सर्वत्र आकररूपेणानुस्यूताः विराजन्ते, येषामनुसरणेन मानवः स्वकीयं हितं सम्पाद्य सुखभाग्भवति अन्यांश्च सुखयति। अतएवोक्तं निबन्धकृता—

ज्ञानविज्ञानराशीनां स्रोतसामुद्भवो यतः।
वेदाख्यं शाश्वतं धाम तदहं कलयेऽनिशम्॥

## आचार्यदेवो भव

प्राचीनकाले भारतवर्षमिदम् 'आर्यावर्त' इति नाम्ना सुप्रसिद्धम् आसीत् लोके वेदे च, अतएव वयमत्र निवासिनः सर्वेऽपि आर्याः। वैदिकी संस्कृतिः एव आर्याणां सर्वस्वम्। श्रुति-स्मृति-पुराणादिसंवलिता संस्कृतिः वैदिकी संस्कृतिरिति जोघुष्यते। तत्र वयम् एतान् सदुपदेशान् प्राप्नुमः— मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव। अथवा—

आचार्यो ब्रह्मणो मूर्तिः पितामूर्तिः प्रजापतेः।
माता पृथिव्या मूर्तिस्तु भ्राता स्वोमूर्विरात्मनः॥ मनुः॥

इत्थं माता-पिता-आचार्यश्च त्रय एव एते आचार्यकोटितां यान्ति, अतएव देवतारूपेण पूज्या उपास्या अनुसरणार्हाश्च। यथा इमौ बालकस्य जन्मदानमारभ्य भरण-पोषण-शिक्षणादिभिः देवतुल्यतां यातः तथैव आचार्योऽपि। यथोक्तम्—"वंशो द्विधा जन्मना विद्यया वा"। इत्थं यथा पितरौ तथैव आचार्यश्च। आचार्यः गुरोरपरपर्यायः। शास्त्रेषु गुरोर्महिमा सादरमेभिः शब्दैर्वर्णितः—

अखण्डमण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

अन्यच्च—

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः॥

अहो कियान् महिमा गुरोः यस्योपरि छात्रप्रतिभायाः प्रबोधनस्य महान् भारः सर्वदैव दरीदृश्यते, कथं न स्यादेतादृशो गुरुवर्य्यः प्रणम्यः। मनुना उपाध्यायादपि आचार्यस्य विशिष्टं महत्त्वं प्रतिपादितम्। उपाध्यायः छात्राणां गृहं गत्वा तानुपदिशति किन्तु आचार्यः गुरुकुलस्य कुलपतित्वेन सर्वोच्चासनासीनो भारतीयायां संस्कृतौ चर्चितोऽस्ति। स विधिवदुपनीतान् एव शिष्यानुपदिशति। इत्थम्—"यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयो-पास्यानि नो इतराणि"। अहो स्पष्टवादिता आचार्यपरम्परायाः। एवं यः शिष्यान् पुत्रवत् साधु शास्ति स नूनं महतोऽपि महीयान्।

स्मरन्तु ब्रह्मर्षेः वसिष्ठस्य रघुकुले सुप्रसिद्धमाचार्यत्वम्। को न जानाति नन्दवंशविनाशकं राजनीतिकोविदम् आचार्यं चाणक्यम्। कौरव-

पाण्डवादिराजकुलेषु लब्धप्रतिष्ठस्य द्रोणाचार्यस्य नाम्ना कः अपरिचितो भवेद् भूतले। यस्मै श्रद्धाविनतकन्धरेण लब्धधनुर्विद्यापाटवेन एकलव्येन स्वकीयाङ्गुष्ठमपि सहर्षं गुरुदक्षिणायां प्रदत्तम्। सत्यमेतद् गुरोराज्ञा गरीयसी, शिष्याय छात्राय वा न किमप्यदेयं भवति तदर्थम्। मास्म विस्मरत महर्षिवरस्य वरतन्तोः अकिञ्चनमपि शिष्यं कौत्सं यः क्रोधावेशवतः स्वाचार्यस्य "कोटीश्चतस्रो दशचाहरेति" आदेशश्रवणसमकालमेव इक्ष्वाकुकुलकेतनस्य राज्ञो रघोः समीपमाजगाम सहसा। रघुरपि विद्याव्रतस्नातकं नवं भास्वन्तं भास्करमिव कौत्सं पुरतः पश्यन् परमां मुदं ययौ। अपृच्छच्च सादरं तदागमनकारणम्, आकर्ण्य तदीयं सकलवृत्तान्तम् अनुभूय च स्वकीयां निःस्वां दशां, बद्धाञ्जलिः तम् प्रार्थयामास स्वकीयायां यज्ञशालायां विश्रमाय। स्वयमपि धनोपार्जनाय कुबेरस्य राजधानीम्प्रति प्रस्थानस्य प्रयत्नं चकार। तद्रात्रौ यः सुवर्णराशिस्तस्य कोषे ववर्ष, राजा रघुः सहर्षं तत्सर्वं कौत्साय ददौ। सोऽपि ततः परिमितं द्रव्यमादाय पुत्रप्राप्तिरूपमाशीर्वादं च रघवे प्रदाय, समुदं चचाल। ततो गुरोराश्रमं प्राप्य सादरं सश्रद्धं सविनयं समस्तां तां धनराशिम् आचार्याय समर्प्य कृतकृत्यो बभूव। वरतन्तुरपि योगबलेन तत् सर्वं विज्ञाय गृहीत्वा च शुभाभीराशीर्भिः सभाजयामास कौत्सम्।

अस्मिन् विस्तीर्णे भारतवर्षे येषां नामानि स्वर्णाक्षरेषु लेख्यतामर्हन्ति, ते सर्वे निःसन्देहं स्वकीयाचार्याणां कृपयैव विद्यायां, वीरतायां, दानशीलतायां, मन्त्रे, तन्त्रे, शिल्पशास्त्रे, ज्ञाने, विज्ञाने, चिकित्सायां, काव्यरचनाप्रभृतिविभिन्नक्षेत्रेषु च सुप्रसिद्धाः जाताः, नात्र कापि विचिकित्सा। अद्य कालविपर्ययेण सर्वेषु क्षेत्रेषु सर्वासु मान्यतासु च असाधारणं परिवर्तनं चक्षुषोरग्रे नरीनर्ति। न तत्सर्वं विघटनकारकं न चापि एकान्ततः कल्याणकारकमेव वक्तुं शक्यते। अतः प्रस्तुतेऽस्मिन् प्रसङ्गे किमपि प्रकरणप्राप्तमुच्यते। तद्यथा–अस्माकं शास्त्राणि तपःपूतैः रजस्तमोभ्यां निर्मुक्तैस्त्रिकालज्ञैर्महात्मभिर्विरचितानि सन्ति, अतएव तानि शाश्वतानि कथ्यन्ते तेषु ये सिद्धान्ताः सुस्थिरीकृता विराजन्ते न ते कदापि उल्लङ्घनीया इति। तेषु एकः सिद्धान्तः अयमपि डिण्डिमघोषपुरःसरं प्रस्तोतुं शक्यते, यदि वयं शिक्षायाः समीचीनां समुपलब्धिं तथा शिक्षाक्षेत्रे शान्तिं च कामयामहे तर्हि निःसन्देहम् पुनरपि अविस्मरणीयः प्राक्तनः

एष सिद्धान्तः, सर्वैः सर्वकालं च स्वीकर्तव्यः यद् "आचार्यदेवो भव" इति । अतएवोक्तं निबन्धकृता--

अमृतस्यन्दिबोधेन महद्भिस्तेजसां चयैः ।
आचार्यस्त्वतिशेतेऽत्र दिवाकरनिशाकरौ ॥

## आचारः परमो धर्मः, वृत्तं यत्नेन संरक्षेत्, शीलं परं भूषणम्, सदाचारः

आङ्पूर्वकगति-भक्षणार्थकचर्धातोरणि आ + चर् + अण् = आचारः शब्दो निष्पद्यते । अर्थात् शास्त्रोपदेशाननतिक्रम्य वर्त्तनम् आचारः। आयुर्वेदमतेऽपि स्वास्थ्यहितान् आलोक्य दिनचर्य्यां रात्रिचर्य्यां ऋतुचर्य्यां च यः सम्यगाचरति मानवः स सुखी भवति । अतः समष्टिरूपेण इदमेव सिद्ध्यति यद् ऐहिकामुष्मिकसुखाय मानवेन आचारस्य सेवनं कर्त्तव्यम्। धर्मस्योपासना सुखायैव भवति इति सुप्रसिद्धम् । अतएवोक्तञ्च—'धनं धर्मस्ततः सुखम्' ।

सदाचारसेवनस्य शास्त्रीयस्वरूपमित्थं निगद्यते—सर्वप्रथमं यम-नियम-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधिभिः सर्वासु दिक्षु कामोपभोगाय प्रसृतानाम् इन्द्रियाणां निग्रहः परमावश्यकः तदनु मनसो वशीकरणम्, इत्थं व्यवसिते सति स पुमान् वशी कथ्यते, तस्यैव प्रज्ञा प्रतिष्ठिता भवति । प्रतिष्ठितप्रज्ञः सः लोके सम्मानं परत्र च परांगतिं लभते । विषयमिमं पर्यालोचयन् पद्यमिदं प्रस्तूयते शास्त्रीयवचनरूपेण—

आपदां कथितः पन्था इन्द्रियाणामसंयमः ।
तज्जयः सम्पदां मार्गो येनेष्टं तेन गम्यताम् ॥

सुस्पष्टमिदं पद्यम्, अतः क एतादृक् पुमान् भविष्यति य आत्मनः कृते आपत्तीः सञ्चिनुयात् । इत्थम् इन्द्रियसंयमी पुरुषो ब्रह्मचर्यतेजोभरैः सर्वान् प्रभावितान् कर्तुं पारयति । एतद्विपरीतः कीदृशः भवति तस्य विषये वृक्षामानवयोः संलापात्मकमेकं पद्यमिहोदाह्रियते । तद्यथा--

सिक्तं प्रीतिभरैर्हिमैः सुमधुरैर्नीरैः श्रमादर्जितै-
रुद्धं प्रस्तरकुड्यकण्टकतृणैः कालात्फलालंकृतम् ।

कीदृशी भवति ते नूनम् अनुभवन्ति, सामाजिका अपि तेषामाकारप्रकारैः तान् सुतरां परिचिन्वन्ति। भरतभुवोऽलङ्करणभूताः ते धन्या ये सङ्ख्यातीतानि कष्टानि सोढ्वाऽपि सत्यमार्गाद् ईषदपि विचलिता न जाताः, अपितु स्वयं सत्यमाचरन्तः तदर्थं परांश्चोपदिशन्तिस्म। एतादृक् पुण्यश्लोकाः अस्माकं भारतवर्षे स्वकीयमातुः दुर्ललिताः कालक्रमेण बहवो जाताः। येषां पाञ्चभौतिका विग्रहा यद्यपि न सन्ति साम्प्रतम् अस्माकं पुरतः किन्तु यशःशरीरेण ते अद्यापि जीवन्तो विलसन्ति, स्थास्यति च तेषां शरच्चन्द्रचन्द्रिकाधवलं सुयशः आसूर्याचन्द्रमसम्। एतेषु अन्यतमाः सन्ति केचन नरोत्तमाः। यथा-पितुः प्रीत्यै ब्रह्मचर्यव्रतं धारयन् सत्यवादी भीष्मपितामहः। स्वप्रतिज्ञापरिपूर्तये राज्यं, पुत्रान्, प्राणांश्च त्यक्तवान् महारथो दशरथः। को न जानाति सत्यवादिनं हरिश्चन्द्रं यः सत्यपरीक्षायां सर्वथा साफल्यमवाप, अद्यापि तस्य ..पत्प्रकारं स्मृत्वा धीरधौरेयाणामपि वज्रकठिनं हृदयं दलति। सत्यपा..परायणः पुरुषः कियतीं लोकोत्तरां शक्तिं बिभर्ति, एतस्य उदाहरणी..तो जगद्वन्द्यो बापूपदाभिधानः श्रीमान्मोहनचन्दकरमचन्दगान्धो, कयत् कालात् प्राक् परतन्त्रतापाशनिगडिताम् अस्माकं भारतमातरं केवलं सत्यशक्त्या एव स्वतन्त्राम् अकरोत्। सत्यभाषणशीलस्य आत्मा महान् भवति, अतएव बापूमहोदयः 'महात्मा' इति विशेषणेन विश्वविश्रुतः समभवत्।

कियल्लिखामः, कियद् वर्णयामः, कियच्च विवेचयामः सत्यं ..क्षान्निराकारं परब्रह्म एव इति सत्यम्। यथा परब्रह्मणो वर्णने चत्वारो ति..ः, षट्शास्त्राणि, अष्टादशपुराणानि अपि पूर्णतया सामर्थ्यं न प्रापुः ..ा एव स्थितिः सत्यस्याऽपि वरीवर्ति। सत्यभाषणशीलस्य सर्वत्रादरो भवति, ततः सुखोपलब्धिः जायते। सर्वे प्राणिनः सुखमेव वाञ्छन्ति। यदि वयं जागतिकं मोहान्धकारं समुच्छिद्य सत्यभाषणपरा भवेम तर्हि नूनम् अस्माकम् इह लोके समादरः परलोके च सुखं भविष्यतीति। अत एवोक्तं निबन्धकृता—

सत्यं माता पिता सत्यं सत्यं द्रविणमेव च।
यस्यास्ति स पुमाँल्लोके सत्यं तस्यैव जीवितम्॥



# धर्मो रक्षति रक्षितः, स्वधर्मे निधनं श्रेयः,
# धर्मश्चर

शास्त्रानुकूलव्यवहारो धर्मः, तत्प्रतिकूलस्तु अधर्मः। यथा तिलेषु तैलं, दुग्धे घृतं, प्राणिषु प्राणाः तथैव आध्यात्मिकजीवने धर्मोऽपि प्राणभूत इति। केवलं पशुपक्षिप्रभृतयो धर्मेण रहिता इति सुप्रसिद्धम्। यथोक्तं नीतिशास्त्रे—

आहारनिद्राभयमैथुनञ्च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्।
धीर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीनाः पशुभिः समानाः॥

मनुष्यपशुसमवाये धर्म एव भेदकरूपेण वर्णितः। यदि नाम मानवो निम्नोक्तदशभिर्लक्षणैर्वियुक्तः स्यात् तर्हि स सर्वं जानन्नपि पशुधरातलादपि अधस्तात् पतति। अथ किमाकारः स धर्मः? तल्लक्षणानि यथा—

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयः शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

एतदतिरिक्तमपरमपि धर्मलक्षणं काणादधर्मसूत्रे। तद्यथा—'यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः'। अर्थात् यस्याचरणेन मनुष्यस्याभ्युदयः कल्याणं च भवेत् स एव धर्मः कथ्यते। केचन अज्ञानतमसावृतबुद्धयः इत्यमुद्घोषयन्ति यत्सर्वदा धर्ममधिकृत्य एव दुराचरणं लोके दृश्यते, तत्सर्वथा तेषां प्रलपनमेव, धर्मस्य यादृक्स्वरूपमुपरि वर्णितमस्ति तदवलोक्य, पठित्वा, व्यवहृत्य च को नाम वक्तुं प्रभवेत्, यदयं विध्वंसक इति। वयन्तु तमेव धर्मं मन्महे येन सम्पूर्णे जगति शान्तिस्थापनापुरस्सरं युद्धाद्युपद्रवाणां निर्मूलनं स्यात्। शास्त्रेषु पुराणेष्वपि च धर्मस्य महान् महिमा दरीदृश्यते। यथा गरुडपुराणे—

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे नारी गृहद्वारि जनाः श्मशाने।
देहश्चितायां परलोकमार्गे धर्मोऽनुगो गच्छति जीव एकः॥

अर्थात् यदा मानवः सांसारिकीं लीलां समाप्य मृत्युमुखमापद्यते तदनु तस्य सर्वेऽपि आत्मीयाः तेन सह कीदृग् व्यवहरन्ति, एतस्य समीचीनं चित्रणमुपरितनपद्ये कृतं वेदव्यासमहाभागेन। यथा— सर्वाण्युपार्जितानि धनानि भूमौ, पशवः गोस्थानके, रुदती प्राणप्रियापत्नी गृहद्वारदेशे, पुत्रमित्रबान्धवादयः श्मशाने तथा परमेण प्रेम्णा लालिता देहश्चितायां यावत्

सहगामी भवति न ततोऽग्रे, तत्पश्चात् परलोकाय प्रस्थितस्य निराश्रयस्य जीवस्य यदि नाम कोऽपि सहगामी वर्तते स एव एको धर्मः। हन्त भोः! को नाम पुरुषाधमः स्याद् य एतादृग् धर्मं नानुचरेत्।

अस्मिन् क्षणभङ्गुरे जीवलोके सर्वेषामेव जनानामियं नैसर्गिकी प्रवृत्तिर्दृश्यते यद् वयं सुखिनो भवाम इति। एतद् विषये सर्वेऽपि यथायथं प्रयतमाना दृष्टिगोचरतां यान्ति। तेषु केचन पूर्वजन्मोपार्जितपुण्यवन्तो भवन्ति, ते स्वल्पेनैवाऽनेहसा अल्पीयसा प्रयत्नेनापि सुखभागिनो भवन्ति, तदपरे घोरप्रयत्नैरपि तथाविधं सुखं नोपलभन्ते। इह लोके धनमेव सुखस्य कारणमिति स्वीकुर्वन्ति सर्वे जनाः किन्तु नैतत् तथ्यमेकान्ततः। धनवन्तोऽपि पुत्ररहिताः, रोगपीडिताः परैराक्रम्यमाणाः, विविधैराधिभिरावृताः सुखेन कालं यापयितुं न पारयन्ति। अकिञ्चनाः अपि धैर्यादिदशभिर्लक्षणैः केनाप्येकेन वा समन्विताः सुखं शेरते। अपरत्र ये भवन्ति स्वाभिमानिनो जनाः ते तु स्वाभिमानधनस्य पुरतः पार्थिवं धनं तृणाय मन्यन्ते। ये तु सुखप्राप्तये अन्यायेन धनोपार्जनं कुर्वन्ति ततः सुखं कामयन्ते तान्प्रति किं वयं पुनरुक्तिं चरितार्थयामः। तेषां कृते प्राचीनामिमामेव सूक्तिं समुद्धरामः—

अन्यायोपार्जितं द्रव्यं दशवर्षाणि तिष्ठति।
प्राप्ते त्वेकादशे वर्षे समूलञ्च विनश्यति॥

धिग् भोः! क एतादृग् विचारशून्यो भविष्यति य आत्मीयान् कुलजान् पुत्रपौत्रादीन् विनाशयितुम् अन्यायेन धनं सञ्चिनुयात्। प्रकारान्तरेण उपर्युक्तां सूक्तिं पद्यमिदं समर्थयति—

अधर्मादेधते तावत् ततो भद्राणि पश्यति।
ततः सपत्नाञ्जयति समूलञ्च विनश्यति॥

कीदृक् चित्रणं विहितमधर्मस्य, एतस्य पूर्वोक्ताः चतस्रः अवस्थाः पश्यन्ति धनलोलुपा जनाः, किन्तु विवेकिनो जना स्वकुलस्य कल्याणभावनाभावितान्तःकरणा दूरदर्शिनो मनीषिणोऽत एव एनमधर्मं परिजहति। पुरुषार्थचतुष्टयस्योपलब्धिरपि धर्मादेव सञ्जायते। प्राचीनकाले ऋषयो महर्षयो राजानश्च धर्मपथानुयायिनो भवन्तिस्म इति अद्यापि जानन्ति सर्वे। तदनन्तरम् इतिहासादीनाम्पर्यालोचनेनापि इदमेव

दृष्टिपथमायाति यद् ये ये राजानो महापुरुषाश्च स्वं स्वं धर्मं न त्यक्तवन्तः तेषाम् अजरं अमरं च यशः शरीरम् अद्यापि स्थितमस्ति, भविष्यति काले स्थास्यति च। प्रसङ्गेऽस्मिन्—'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः'। इति सूक्तेः अक्षरशः समर्थकं प्रतापशालिनं महाराणाप्रतापं किं वयं कदापि विस्मरिष्यामः? यत् तेन अनिर्वचनीयाया आत्मनो धृतिशीलतायाः परिचयः घासस्य रोटिकाः खादतः स्वबालकान् अवलोक्यापि प्रदत्तः। वयं कामयामहे यदस्माकं भारते पुनरपि तादृशाः धर्मधुरन्धरा जनिं प्राप्नुयुः।

स्वतन्त्रतासङ्ग्रामप्रसङ्गे अस्माकं भारतीयैः मोतीलालनेहरू-गान्धि-मदनमोहनमालवीय-लोकमान्यतिलकप्रभृतिभिः धृति-क्षमादिधर्म-लक्षणानां योहि परिचयो दत्तः, तेनैव अद्य वयं स्वतन्त्राः स्मः। धर्मस्य विषये नाधिकं किमपि वक्तव्यमवशिष्यते, यतोहि यस्तस्य रक्षणं करिष्यति सोऽपि तं रक्षयिष्यति, यस्तं विनाशयति सोऽपि तं विनाशयितुं प्रभवति। यथोक्तम्—'धर्म एव हतो हन्ति धर्मो रक्षति रक्षितः', । 'यतो धर्मस्ततो जयः', 'धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते'। इति सुभाषितसमुच्चयम्, । पर्यन्ते समापनसूक्तिः पुरस्क्रियते—

मानुष्ये सति दुर्लभा पुरुषता पुंस्त्वे पुनर्विप्रता
विप्रत्वे बहुविद्यताऽतिगुणता विद्यावतोऽर्थज्ञता।
अर्थज्ञस्य विचित्रवाक्यपटुता तत्रापि लोकज्ञता
लोकज्ञस्य समस्तशास्त्रविदुषो धर्मे मतिर्दुर्लभा॥

• •

## धर्मार्थकाममोक्षाणामारोग्यं मूलमुत्तमम्,
## शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्

इह संसारे मानवजीवनस्य प्रधानं लक्ष्यं भवति चतुर्वर्गफलप्राप्तिः। यदर्थं भृशं प्रयतमानेषु पुरुषेषु कश्चन एव पुण्यवान् स्वकीयं मनोरथं पूरयितुं भवति समर्थः। यतोहि 'श्रेयांसि बहुविघ्नानि'। श्रेयः पथाग्रेसरं पुमांसं विघ्नभूता बहवोऽन्तरायाः तस्य पदं पश्चाद् आकर्षयन्ति। अन्ततो गत्वा स एव पुमान् उत्तमकोटौ स्थास्यति, यः कार्यं प्रारभ्य सफलता-प्राप्तिपर्यन्तं तदर्थं बद्धपरिकरो भूत्वा निरन्तरं यतते। यथोक्तम्—

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः,
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः ।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः,
प्रारभ्य चोत्तमजनाः न परित्यजन्ति ॥

प्रारिप्सितकार्यविघातकेषु विघ्नेषु अस्वास्थ्यम् अन्यतमत्कारणम् । येन न केवलं कार्यस्य सिद्धिः एव अवरुद्धा जायते, अपितु कार्यकर्तुः प्राणहानिरपि सम्भवति । एतस्मिन्नेव विषये विशिष्य विवेच्यते शीर्षकस्थविषयोऽयम् । महाकविना कालिदासेन स एव विषयः सूक्तिरूपेण "शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम्" इति निर्दिष्टः । योहि भावः उपर्युक्तशीर्षकस्य स एव अस्या अपि सूक्तेः, इति तु सर्वे जानन्त्येव । पुरुषः यत् किमपि कार्यं कर्तुम् उद्यतो भवति तदर्थं स्वस्थशरीरस्य परमावश्यकता भवति । स्वस्थशरीरमन्तरा कोऽपि किमपि कर्तुं न पारयति । स्वस्थया बुद्धया विचार्य कृतं कार्यं श्रेयसे स्थेयसे च कल्पते । इदमपि शास्त्रेषु दृश्यते यत् 'शरीरं व्याधिमन्दिरम्' यावन्तो रोगाः चिकित्साग्रन्थेषु वर्णिताः सन्ति तेषाम् अधिष्ठानं शरीरमेव । अतः आयुर्वेदशास्त्रे लिखितमस्ति यत् "स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणम् आतुरस्य व्याधेः परिमोक्षणम्" । अर्थात् सर्वप्रथमं स्वस्थपुरुषस्य स्वास्थ्यरक्षायाः प्रयत्नो विधेयः । यदि केनापि कारणेन स आतुरो भवेत् तदनन्तरं शीघ्रमेव तस्य चिकित्सा कर्तव्या भवति । नहि स्वास्थ्याद् ऋते मानवः किमपि कर्तुं पारयति ।

उपर्युक्तशीर्षकस्य अयमपि भावः व्यज्यते यद् धर्मार्थकाममोक्षेषु मोक्षस्य प्राधान्यम् । स च मोक्षः धर्मादनपेताभ्याम् अर्थकामाभ्याम् उपलभ्यते । अर्थेन सर्वाणि कार्याणि सांसारिकसुखानि च सुलभानि भवन्ति । कामेन ऐन्द्रियिकसुखोपभोगः सम्भवति । इत्थं विचार्यमाणे धर्म एव प्रधानं कारणं चतुर्वर्गफलप्राप्तेः । तेषां समेषां मूलरूपेण विराजते आरोग्यम् । येन विना मानवः किमपि कर्तुं न पारयति । यतोहि अस्वस्थः पुमान् सर्वथा परवशः भवति, यदि विवशस्य तस्य चिकित्सकस्य आदेशाद् विपरीतं किमपि कर्तुम् इच्छा भवति तर्हि सः येन केनापि प्रकारेण अहितमपि स्वेच्छितं करोति ततः पूर्वतोऽपि अधिकं कष्टं लभते । यदि चिकित्सकः पृच्छति कथं तव रोगो वृद्धिङ्गतः किं त्वया एतद् अपथ्यमाचरितं सः कथयति न मयैतत् कृतम् । स जानन्नपि अनारोग्यचपलेन्द्रियः असत्य-

भाषणरूपमधर्ममाचरति, इति सर्वेषामनुभवः। एवमेव अर्थोपार्जने आरोग्यस्य परमावश्यकता। यतोहि 'व्यापारे लक्ष्मीः वसति' स ए व्यापारं कर्तुं प्रभवति यः सर्वात्मना नीरोगः स्यात् व्यापारिणः पुरु अहर्निशं कार्येषु व्यापृता दृश्यन्ते धूम्रयानेषु, पोतेषु वायुयानादि वाहनेषु यः संरम्भो जनानां दृश्यते सः प्रायेण व्यापारमूलक एव। य नाम मानवः विविधैः रोगैः एकेनापि वा पीडितः स्यात् तर्हि कथं प्रभवेद् व्यापारे। असमर्थश्चेत् अर्थहीनतां यास्यति ततः अनर्थैः प वारितो भविष्यति। यदि पैतृकमपि विपुलं धनं स्यात् तस्य सविधे तत्त चिकित्सायां व्ययीभविष्यति, शेषं तस्य अस्वास्थ्यकाले तदशेषं लुण्टाकाः आत्मसात् करिष्यन्ति। अपरमपि अस्वस्थावस्थायां न किम स्वात्मार्थे तस्य उपयोगं कर्तुं स सक्षमः। आरोग्यविहीनस्य किं धनेनापि।

सर्वाङ्गसुन्दरः, सुखसाधनशतैः समन्वितः, उद्यद्यौवनगर्विताभि सुवासिनीभिः परिवृतोऽपि रुग्णः क्षीणसर्वेन्द्रियः सः केवलं रोदिति न कामान् उपभोक्तुं प्रभवति। अतः सर्वैरपि पुरुषैः आत्मनो जीवनं धार्मि प्रकारेण आरोग्यमूलकं करणीयम्। आरोग्यसम्पादनाय सन्ति प्रमु रूपेण केचन नियमाः। यथा 'हिताशी स्यान्मिताशी स्यात् कालभो जितेन्द्रियः'। एतस्यायमेवाशयः यद् हितकरं भोजनम् अश्नीयात् तद परिमितं निश्चितसमयानुसारं सेवनीयम्, तत्रापि जितेन्द्रियतायाः पर वश्यकता भवति। यदि मानवः आरोग्यस्य सम्पादनं न कुर्यात् तर्हि केऽपि तस्मिन् स्निह्येयुः। यथोक्तम्—

वनानि दहतो वह्नेः सखा भवति मारुतः।
स एव दीपनाशाय कृशे कस्यास्ति सौहृदम्॥

अपरमपि पद्यममुमेव भावं समर्थयति—

अश्वं नैव गजं नैव व्याघ्रं नैव च नैव च।
अजापुत्रं बलिं दद्याद् दैवो दुर्बलघातकः॥

सृष्टेरारम्भादेव इदं दरीदृश्यते यद् दुर्बलान् बलिनः तिरस्कुर्व पीडयन्ति, भक्षयन्ति च। अतः ब्रह्मचर्यादिनियमपरिपालनेन यथा आरो लाभः स्यात्तथा प्रयतनीयम्। आरोग्याद् ऋते मानवस्य न कोऽपि स

प्रत्युत यथाक्रमं सर्वेऽपि शत्रुभावमापद्यन्ते। यतोहि स्वस्थशरीरवान् एव पुमान् धर्मार्थकाममोक्षादीन् प्राप्तुं समर्थो भवति।

•

## जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी, मातृभूमेः महत्त्वम्

माता मातृभूमिश्च सर्वविधसुखसम्पन्नं स्वर्गमपि अतिशयाते, इत्याशयः उपरितनशीर्षकस्य। विचारणीयमिदमवशिष्यते यदस्माकं मातुः मातृभूमेश्च किं स्थानम्? अथवा कतमः सः सम्बन्धो वरीवर्ति येन सा स्वर्गादपि अतिरिच्यते। प्रबन्धस्यास्य एष एव विचारविषयः। जन्मदानात् सा माता जननीति कथ्यते। यदि वयं गर्भधारणादारभ्य पालनपोषणपर्यन्तं मातुः स्नेहपूर्णां सद्व्यवहारपरम्परां स्मरामः तर्हि अस्माकं हृदि महान् श्रद्धासञ्चारो मातुश्चरणयोराविर्भवति। तद्यथा—गर्भधारणमारभ्य दशमासपर्यन्तं विषमविषमाणि देहकार्श्यकराणि कष्टानि यथाकथञ्चित् सोढ्वापि प्रसवकाले महत्कष्टमनुभवति जननी, ततः प्रभृति-बालकस्य मलमूत्रादिदूषिते शयने शयाना रात्रीः अतिवाहयन्ती बालकं सुखेन बिभ्राणा लालनपालनादिभिः संवर्धयन्ती आत्मानं धन्यं मनुते। अहो! एतादृशीं मातुः सहनशक्तिं स्मारं स्मारं कस्य सचेतसः स्वान्तं द्रवीभूतं न भवेत्। ततः स्वकीयमेतादृक् कष्टभारमविगणय्य बालकस्य स्वल्पेऽपि कष्टे व्याकुलितान्तःकरणा भूत्वा तस्य प्रतीकाराय प्रयतते। अतएव एषा सूक्तिः सादरं स्मृतिपथं नीयते सङ्ख्यातीतैः सङ्ख्यावद्भिः—'न मातुर्दैवतं परम्'। अवितथमेतत्, न चात्र किमपि शङ्कनीयम्। महामानवेन मनुनाऽपि विषयेऽस्मिन् इत्थं प्रतिपादितमस्ति यत् मातापित्रोः ऋणात् कथमपि मानवस्य निस्तारो न भवति इति। यथा—

यं मातापितरौ क्लेशं सहेते सम्भवे नृणाम्।
न तस्य निष्कृतिः शक्या कर्तुं वर्षशतैरपि॥

अतएव अस्माकं पूर्वाचार्यैः उपदिष्टमुपनिषदि 'मातृदेवो भव' इति। अन्यदपि जनाः यथा सुखे दुःखे च समभावेन मातरं स्मरन्ति न तथा कमपि अन्यं बान्धवम्। मातापि आत्मजैः सह येन स्नेहेन व्यवहरति तस्य

तुलनां कर्तुं न कोऽपि प्राणी पारयति। अपरत्रापि मातुर्महत्वं मनुं विवृणोति—

उपाध्यायान्दशाचार्यं आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रन्तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते॥

इत्थं सङ्क्षेपेण जननीमाहात्म्यं विविच्य प्रसङ्गानुसारं जन्मभूमिवि- येऽपि किञ्चित् प्रपञ्चयामः। जन्मभूमिरेव मातृभूमिः, इति तु निश्चप्रच उपरि यावन्तो गुणाः मातुः समुपवर्णिताः ततोऽप्यधिका गुणाः मातृ परिलक्ष्यन्ते। पश्यन्तु भवन्तः! यदा वयं मातुर्गर्भगह्वराद् बहिरागच्छ तदानीं मातरं बालकञ्च जन्मभूमिरेव क्रोडीकरोति। अपरमपि भूम क्रोडे वयं क्रीडामः, तया एव प्रदत्तम् अन्नं, फलं, मूलं, जलादि परिशीलयामः। धन्यतमा इयं जन्मभूमिः या अस्माकं मात्रा अस्मानपि लालयति, पालयति, पोषयति, वर्धयति च। अतो हे वैदिकसाहित्येऽपि भूमातुः प्रशंसापराणि भूयांसि वचनानि समुपलभ्यन्ते यथा—"माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः"। अपरमपि—"मा नो म पृथिवी दुर्मतौ धात्"। इतोऽग्रे जन्मभूमिप्रशंसापरः श्लोकोऽयं पृ श्लोकतां भजते—

जन्मभूमिं विहायान्यां भूमिं यः सेवते जनः।
सुरभिं स निराकृत्य रासभीं भजते जडः॥

प्रसङ्गेऽस्मिन् कथानकमेकमुदाह्रियते-यदा लक्ष्मणः लङ्कां प्राप तस् स्वरूपं वैभवञ्च विलोक्य ताम्प्रति आकृष्टमानसो बभूव, तदा तस्य म भावं विज्ञाय श्रीरामचन्द्रः कथयति। हे लक्ष्मण! श्रूयताम्—

अपि स्वर्णमयी लङ्का न मे लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी॥

अवितथमिदं यद् महतां विचारचर्चापि सामान्यजनमानसा- रिच्यते। जन्मभूमेः प्रेयान् कश्चित् कविः मरालान्योक्तिवर्णनव्या स्वकीयविचारचातुरीमभिव्यञ्जयति—

अस्ति यद्यपि सर्वत्र नीरं नीरजमण्डितम्।
रमते न मरालस्य मानसं मानसं विना॥

सत्यमेव स्वकीयजन्मभूमिसम्बन्धिस्नेहः सर्वदा समं सर्वेषु स नात्र सन्देहलेशावसरः। दुष्यन्तसङ्गमनोत्सुकाऽपि महर्षिकण्वला

पालिता च शकुन्तला पतिगृहगमनावसरे आश्रमपरित्यागकातरा अश्रूणि मुञ्चन्ती कण्वम्प्रति गद्‌गदस्वरेण कथयति। 'तात! मलयोन्मूलिता चन्दनलता इव कथं देशान्तरे जीवनं धारयिष्ये'। अहो! अनन्यमनसा दुष्यन्तं विचिन्तयन्त्या अपि शकुन्तलायाः जन्मभूमिस्नेहः। अत्र कविना जडापि चन्दनलता विदेशे रोपिताऽपि न तथा गन्धादिगुणगणगौरवाढ्या भवति यथा स्वजन्मभूमौ मलयपर्वते, इति व्याकृत्य जन्मभूमेर्महन्महत्वं प्रत्यपादि। आलोकयन्तु भवन्तः-पशवः, पक्षिणः, लताः, वृक्षाः, गुल्मादयः यादृशीं स्वस्थतां, प्रसन्नतां, स्वच्छन्दतां च स्वभूमौ अनुभवन्ति न तथा अन्यत्र। स्वर्णपञ्जरे बहुविधान्नपानादिभिर्लालितः शुकः न तथा प्रसन्नो दृश्यते यथा निराश्रयोऽपि वृक्षकोटरादिषु वसन् स्वच्छन्दः सन् विहरति।

अतः शीर्षकस्थं मतं सिद्धान्तरूपेण निश्चीयते यत् मातुः, मातृभूमेः देशभक्तेः च यन्महत्वं वरीवर्ति तन्नान्यस्य। अत्र चिरन्तनस्मरणीयां सूक्तिमेकां पुरस्कृत्य विरम्यते।

जननी जन्मभूमिश्च जाह्नवी च जनार्दनः।
जनकः परमोदारा जकाराः पञ्च दुर्लभाः॥

●

## यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः

"यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः"। इति ब्रुवता महामानवेन मनुना विषयेऽस्मिन् अनल्पं जल्पितम् अमुना पद्यांशेन नारीणां यन्माहात्म्यमुद्भावितन्तत्सर्वथाऽवितथमेव। अत्र नारीणां पूजनस्य न तादृगभिप्रायः, यथा देवमूर्तयः प्रासादेषु, देवागारेषु पञ्चोपचारैः षोडशोपचारैर्वा पूज्यन्ते, अपितु स्त्रीणां समाजे समादरः, समानाधिकारः एव तासां यथार्हा पूजा। पुरा युगे समादृताः, सभाजिताः प्राप्तसमानाधिकाराश्च स्त्रियः कलासु, विद्यासु युद्धादिकौशलेषु च ख्यातिमुपजग्मुः, इति न कस्यापि तिरोहितम्। तथापि उदाहरणस्वरूपेण किमप्युपस्थाप्यते—राज्ञो जनकस्य सभायां गार्गीतः शास्त्रार्थप्रसङ्गे याज्ञवल्क्यो महर्षिः पराभवं प्राप, जगद्गुरुशङ्कराचार्यमण्डनमिश्रयोः शास्त्रार्थे सर्वशास्त्रशेमुषीशालिनी-मण्डनमिश्रस्य पत्नी निर्णयं ददौ। विदुषी विद्योत्तमा निरक्षरं स्वं पति-

गृहान्निर्वासयामास । स्मरत चित्रलेखां यया स्वचित्रकलया एव उषापतिः प्रद्युम्नः परिचाय्य तद्गृहादानाय्य उषायै समर्पितः। नारीणां युद्धकौशलमपि पुरुषाणामपेक्षया न क्वापि ईषदपि न्यूनताङ्गतम् । यदा महिषाद्यसुरैः पराजिता देवा ब्रह्माणं पुरस्कृत्य भगवतो विष्णोः शरणं प्रपन्नाः, तदा सर्वशक्तिमयी भगवती दुर्गा प्रादुर्भूता तया सर्वेऽपि दानवा युद्धभूमौ हताः। अनेनैव निर्णीतम्भवति या च पराशक्तिर्विद्यते सा नारीरूपेणैवावस्थिता वर्तते। भरतस्य मातुः कैकेय्याः रणकौशलं सर्वे जानन्त्येव तथा महाराज्ञी लक्ष्मीबाईप्रभृतयो नार्यः स्वमपूर्वं पुरुषातिशायि रणकौशलं प्रकटयाम्बभूवुः। यथा एतासां विद्यादिक्षेत्रेषु पाटवं समुपवर्णितम्, तथैवैताः स्नेह-दया-दाक्षिण्य-वत्सलता-ममता-पवित्रता-श्रद्धादिक्षेत्रेषु केनापि सह तुलनामर्हन्ति ।

सृष्टेरारम्भत एव नारीणां योगदानमविस्मरणीयतमं विद्यते। यतः स्त्रीपुरुषयोः संयोगादेव पुत्रकन्यारूपप्रजोत्पत्तिः सम्भवति । स्त्रियमन्तरा ब्रह्मणः सृष्टेः क्रमस्य एवापायः सुनिश्चितः । श्रद्धाविग्रहवतीनाम् एतासां जननीरूपमेव प्रशस्यतमम्। अतएव सुभाषितमिदमुदाह्रियते पाठकानाम्पुरस्तात्—

प्रजनार्थं महाभागाः पूजार्हा गृहयोषितः ।
स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन ॥

अयम्भावः पद्यस्यास्य राम-कृष्ण-युधिष्ठिर-गौतम-बुद्ध-गान्धिप्रभृतीन् भगवतः अवतारस्वरूपान् या जनयन्ति ताः स्त्रियः गृहस्य देशस्याऽपि शोभासमृद्धये पूज्याः अत एव ताः श्रीस्वरूपा अपि कथ्यन्ते । यथा भूमाता अस्माकं सर्वं कृत्यजातं सहते, तथैव माता बालकाय कदाचिदपि न क्रुध्यति, द्रुह्यति, ईर्ष्यति च । अतएवोक्तं भगवता शङ्कराचार्येण—

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ।

एतदर्थमेव सा पूज्यतमा कथ्यते । सूक्तिसमुच्चयेषु स्त्रीणां महत्त्वं बहुत्र वर्णितं विद्यते तेषु अन्यतमं पद्यमिह पुरस्क्रियते—

वृक्षमूलेऽपि दयिता यत्र तिष्ठति तद् गृहम् ।
प्रासादोऽपि तया हीनः महारण्यसमः स्मृतः ॥

अपरमपि पञ्चतन्त्रोक्तं पद्यं सुभाषितमेतदनुकरोति—

न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते ।
गृहन्तु गृहिणीहीनं कान्तारादतिरिच्यते ॥

इत्थं गार्हस्थ्यजीवने नारीमहत्वं सूपवर्णितं मिलति । यथार्थबुद्ध्या यदि यं विवेचयामः तर्हि गृहस्थजीवनस्य आधारभूता शिला नारी एवास्ति । गृहस्थ एव समस्तप्राणिनामुपकाराय पूर्वाचार्यैः परिकल्पतः इति अस्माकं नीषा । अन्यथा ब्रह्मचर्य्य-वानप्रस्थ-सन्यासाद्याश्रमस्थाः स्वस्यापि-भरणपोषणे परमुखापेक्षिणो भवन्ति, कथं ते परेषां साहाय्यं विधास्यन्ति । अतएव कालिदासः स्वकीये रघुवंशमहाकाव्ये कथितवान् रघुमुखेन कौत्सम्प्रति-'सर्वोपकारक्षममाश्रमन्ते' । नूनं गार्हस्थ्यजीवनं सर्वोपकाराय कल्पते, यस्य मूलभित्तिः सुशीला नारी वर्तते । अतोऽत्र पुष्कलं नारी-माहात्म्यवर्णनोपेतं पद्यमेकं प्रस्तूयते --

साध्वी शीलवती दयावसुमती दाक्षिण्यलज्जावती
तन्वी व्याजपराङ्मुखी स्मितमुखी मुग्धा प्रियालापिनी ।
देव-ब्राह्मण-बन्धु-सज्जनहिता यस्यास्ति भार्या गृहे
तस्यार्थागममोक्षभोगफलदा सैकैव पुण्यालता ॥

उपर्युक्ते पद्ये रूपकमुखेन प्रशस्तायाः स्त्रियः समस्तलक्षणानि सङ्क्षेपेण वर्णितानि विलसन्ति । अतएव मनुरपि स्वकीयायां स्मृतौ नारीमहत्वमुप-वर्णयन् निर्दिशति । तद्यथा—

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।
यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः ॥
तस्मादेताः सदा पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः ।
भूतिकामैर्नरैर्नित्यं सत्कारेषूत्सवेषु च ॥

सन्ति अपराण्यपि कानिचिद् वाक्यानि यैः ताः सर्वथा परतन्त्रतापाशे संयताः । यतः ताः स्वतन्त्रा भूत्वा न किमपि कर्तुं पारयन्ति । आधुनिक-युगे स्त्रियः अपि समानाधिकारप्राप्त्यर्थं प्रयतन्ते । यदि ताः प्राचीनादर्शान् निर्वहेयुः, तदा नूनं राष्ट्रं नवीनां दिशं, गतिं, मतिं च प्राप्य संसारस्य समक्षे नूतनं कीर्तिस्तम्भं स्थापयिष्यतीति आशास्महे ।

# सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम्, संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति, सत्सङ्गजानि निधानान्यपि तारयन्ति

मानवस्य अयं स्वभावः अस्ति यत् सः सर्वदा येन केनापि प्रकारेण स्वकीयाऽभ्युदयाय प्रयतते, सः कदाचिद् देवमाराधयति, मन्त्र-तन्त्राणि जपति, भूत-प्रेतदीन् वशयति, धनिकान् आश्रयति, चौर्यं चरति, परेषां लुण्ठनाय उद्युङ्क्ते, विद्यामभ्यस्यति, किंवा महतां चाटुकारितां कुरुते तथापि सः आत्मीयान्मनोरथान् प्राप्तुं न क्षमते। एतेष्वप्रशस्तोपायेषु तत्परस्य तस्य न क्वाऽपि मोक्षोऽवलोक्यते। अभ्युदयाय प्रयतमानस्य तस्य विश्वस्मिन् सर्वोत्तमः उपायः सत्सङ्गतिरेवास्ति। अहो! महान् प्रभावः सत्सङ्गतेः। सत्सङ्गतिप्रभावात् मूर्खः अपि विद्वान् भवति, निर्धनः धनवान्, रोगी नीरोगः, अलसः निरलसः, पापी धर्मात्मा, अज्ञानी ज्ञानवान् किं बहुना मानवेषु यो यो हीनभावः दृश्यते तत्सर्वं सत्सङ्गतिमाहात्म्याद् अनायासमेव दूरीभवति नात्र सन्देहलेशः। मानवः यादृशीं सङ्गतिम् आश्रयति तादृगेव स्वरूपं बिभर्ति, विषयमिममधिकृत्य भर्तृहरिणा नीतिशतके पद्यमेकं निर्दिष्टम्—

सन्तप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामाऽपि न ज्ञायते
मुक्ताकारतया तदेव नलिनीपत्रस्थितं राजते।
स्वात्यां सागरशुक्तिमध्यपतितं तन्मौक्तिकं जायते
प्रायेणाधममध्यमोत्तमजुषामेवं विधा वृत्तयः॥

पश्यत यूयम् एकस्यैव जलस्य दुष्ट-सामान्य-सत्सम्पर्कात् कीदृशी आकारपरिवृत्तिः समजनि प्रत्यक्षमेतत्। अपरमपि—

मलयाचलगन्धेन त्विन्धनं चन्दनायते।
तथा सज्जनसङ्गेन दुर्जनः सज्जनायते॥

अतः परं सारालङ्कारवर्णनव्याजेन सत्सङ्गतेः वर्णनम्प्रस्तूयते—

चन्दनं शीतलं लोके चन्दनादपि चन्द्रमाः।
चन्द्रचन्दनयोर्मध्ये शीतला साधुसङ्गतिः॥

महतां सङ्गो नीचानपि महत्पदेषु प्रतिष्ठापयति, यथा—

कीटोऽपि सुमनः सङ्गादारोहति सतां शिरः ।
अश्मापि याति देवत्वं महद्भिः सुप्रतिष्ठितः ॥

भगवता श्रीकृष्णेन सङ्गस्य निषेधः प्रस्तुतप्रकारेण प्रदर्शितः अस्ति, यथा—

सङ्गात्सञ्जायते कामः कामात् क्रोधोऽभिजायते ।
क्रोधाद् भवति सम्मोहः सम्मोहात्स्मृतिविभ्रमः ॥
स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात्प्रणश्यति ।

सङ्गस्यैषा परम्परा सर्वथानर्थदायिनीति विश्वजनीनं सत्यम् । एतस्य प्रतीकाराय अपरं सुभाषितं प्रस्तूयते—

सङ्गः सर्वात्मना त्याज्यः सचेत्त्यक्तुं न शक्यते ।
स सद्भिः सह कर्तव्यः सन्तः सङ्गस्य भेषजम् ॥

अलं सुभाषितसम्भारेण, प्रसङ्गेऽस्मिन् पुरातनीं कथामेकां प्रस्तौमि-- एकः शुकः मुनेः गृहे अपरो गवाशनस्य यवनस्य गृहे पालितः आसीत् । मुनिशुकः कमपि पथिकं प्राबोधयन् पद्यमिदं वक्ति—

अहं मुनीनां वचनं शृणोमि शृणोत्ययं वै यवनस्य वाक्यम् ।
न चास्य दोषो न च मे गुणोऽस्ति संसर्गजा दोषगुणा भवन्ति ॥

एवमेव यादृग् गुणाः सन्ति सज्जनानां सहवासे तादृग् दोषाः दुर्जनानां सङ्गेऽपि, प्रकरणवशात्प्रस्तूयते—

अहो दुर्जनसंसर्गान्मानहानिः पदे पदे ।
पावको लौहसङ्गेन मुद्गरैरभिहन्यते ॥

अतएव रावणसङ्गतस्य समुद्रस्यापि सेतुबन्धनरूपो मानभङ्गः स्पष्टं यद् राक्षसविनाशकेन रामभद्रेण व्यधायि । किं बहुना सत्सङ्गतेः महिम्ना काव्यानि पुराणानि सूक्तिग्रन्थाः सङ्ख्यावतां सङ्ख्यातीतानि मनःसरांसि च सत्सङ्गतिसुधापयःपूरपूरितानि सन्ति, अतएव सत्सङ्गतिप्रभाववर्णनमुखरश्लोकद्वयेन निबन्धसमाप्तिः क्रियते—

दूरीकरोति कुमतिं विमलीकरोति चेतश्चिरन्तनमघं चुलुकीकरोति ।
भूतेषु किं च करुणां बहुलीकरोति सङ्गः सतां किमु न मङ्गलमातनोति ॥

प्रकारान्तरेण उपर्युक्तपद्यगतमेव भावं पद्येऽस्मिन् अपि निभालयन्तु—

जाड्यं धियो हरति सिञ्चति वाचि सत्यं
मानोन्नतिं दिशति पापमपाकरोति ।

चेतः प्रसादयति दिक्षु तनोति कीर्ति
सत्सङ्गतिः कथय किं न करोति पुंसाम् ।

यत्कार्यं कुतश्चन साधयितुं मानवः न प्रभवति, यदर्थं सर्वथा निराशतां याति, तदपि यदि भुवस्तले केनापि प्रकारेण कर्तुंशक्यते तर्हि तस्य सरलोपायः अस्ति सत्सङ्गतेः आश्रयणम् । अनया न केवलं भौतिका लाभा अपितु चतुर्वर्गफलप्राप्तिः अपि सुलभा । इयं सत्सङ्गतिः भगवत्कृपया अनायासेनैव प्राप्यते पुण्यचरितवद्भिः ।

## परोपकाराय सतां विभूतयः

परेषाम्—उपकारः परोपकारः, तदर्थं सतां सज्जनानां विभूतयः भवन्ति इति शीर्षकस्यास्य आशयः । ता एव विभूतयः अणिमादिभिरष्टभिर्नामभिः सुप्रसिद्धाः संसारे । तद्वक्ष्यन्ते—

अणिमा महिमा चैव गरिमा लघिमा तथा ।
प्राप्तिः प्राकाम्यमीशित्वं वशित्व चाष्टसिद्धयः ॥

अलं पल्लवितेन, स्वार्थभावनां विहाय यत् किमपि परार्थं क्रियते प्राणिमात्रेण स एव परोपकारपदवाच्यतां याति । 'परोपकाराय सतां विभूतयः' इति यदुच्यते तत्र सतां स्वरूपं कीदृशम् ? येषां विभूतयः परोपकाराय भवन्ति, तत्समाधीयते—

किमत्र चित्रं यत्सन्तः परानुग्रहतत्पराः ।
नहि स्वदेहशैत्याय जायन्ते चन्दनद्रुमाः ॥

पद्येनानेन व्यज्यते यत् जडेष्वपि परोपकारभावो भवति किम्पुनः सचेतनेषु सज्जनेषु । यथा चन्दनानां शैत्यस्य प्रयोगः परेभ्यो भवति नात्मने । इत्यनेन सतां जीवनमेव अन्येषां कृते भवतीति सम्पिण्डितोऽर्थः । अयं हि परोपकारः न केवलं सज्जनेषु एव प्रयुज्यते सद्भिः अपितु यस्मिन् कस्मिन्नपि पुरुषे । यथोक्तम्—

उपकारिषु यः साधु साधुत्वे तस्य को गुणः ।
अपकारिषु यः साधुः स साधुः सद्भिरुच्यते ।

इत्थं पद्यद्वयेन सतां स्वरूपसमुपस्थापना सङ्क्षेपेणात्र विहिता । एतादृग्गुणगणैर्युक्ताः सन्तः परहितसाधनव्रतं सम्यग्रूपेण निर्वहन्ति ।

यदि वयं चराचररूपजगतः सर्वेक्षणं सूक्ष्मेक्षिकया कुर्मः तदा स्पष्टतया इदमभिव्यज्यते यत् न केवलं मानवा एव अपितु पशवः, वृक्षाः, पर्वताः, सरितः अपि निरन्तरं परोपकारकर्म निर्व्याजं समाचरन्ति। तद्यथा—

रविश्चन्द्रो घना वृक्षा नद्यो गावश्च सज्जनाः।
एते परोपकाराय युगे दैवेन निर्मिताः॥

अपरमपि—

रत्नाकरः किं कुरुते स्वरत्नैर्विन्ध्याचलः किं करिभिः करोति।
श्रीखण्डवृक्षैर्मलयाचलः किं परोपकाराय सतां विभूतयः॥

अन्यदपि—

परोपकाराय फलन्ति वृक्षाः परोपकाराय वहन्ति नद्यः।
परोपकाराय दुहन्ति गावः परोपकारार्थमिदं शरीरम्॥

इतरदपि—

भवन्ति नम्रास्तरवः फलोद्गमैर्नवाम्बुभिर्भूमिविलम्बिनो घनाः।
अनुद्धताः सत्पुरुषाः समृद्धिभिः स्वभाव एवैष परोपकारिणाम्॥

इत्थं परोपकारिभिः शास्त्रज्ञैः प्रकृतिसरलैः सद्भावशीलैः सत्पुरुषैः परोपकारस्य महिमा सुविशदं यत्र तत्र सर्वत्र प्राकाम्येन निरूपितो विलसति। इदमपि समुपलभ्यते परोपकृतिभावनाविरहितपुरुषेभ्यः ते पशवः धन्याः सन्ति येषाम् सम्पूर्णं जीवनं परोपकाराय घटते, मरणानन्तरमपि तेषां शरीरावयवैः परोपकार एव बोभवीति। तद्यथा—

परोपकारशून्यस्य धिङ्मनुष्यस्य जीवितम्।
धन्यास्ते पशवो येषां चर्माप्युपकरोति हि॥

बहुभिः नृपैः ऋषिभिः महर्षिभिः स्वकीयदेहोऽपि परोपकाराय तृणीकृत इति परम्परयाऽनुश्रूयते। एतादृङ्महापुरुषेषु चारुचरितस्य जीमूतवाहनस्य चर्चा सज्जनान् चमच्चरीकर्तुं चरमां सीमामधिरोहति। एतेन महाबाहुना शङ्खचूडस्य प्राणाः महाहिमस्तिष्कविपाटनपटीयसः गरुडाद् आत्मसमर्पणद्वारा संरक्षिताः। सङ्क्षेपेण तद्यथा—बध्यशिलायामुपविश्य धीरोदात्तचरितो जीमूतवाहनः कथयति, मया यत्सुखं शैशवे मातुरुत्सङ्गे नाधिगतम्, तदद्य परार्थे देहमुज्झता बध्यशिलायाम्प्राप्तम्।

परोपकारस्य स्वरूपं वर्णयद्भिः प्राचीनैराचार्यप्रवरैः यदुक्तं तत्सर्वथा-अवितथमेव। तैरुक्तं यत् कायिक-वाचिक-मानसिकव्यापारेषु एव

परेषामुपकारः सीमितो न भवति अपितु सति आवश्यके धनव्ययेन प्राणैरपि च परोपकारः कर्तव्यः। इत्थं कृतस्य परोपकारस्य यत्पुण्यं भवति तद् अनेकैरपि यज्ञादिभिः प्राप्तुं न शक्यते। परमेश्वरः अपि प्राणिनामुपकाराय समये समये अवतारान् गृहीत्वा तान् आततायिभ्यो रक्षति, स्वयं पदातिः सन् भक्तजनोपकाराय इतस्ततो धावति।

ईश्वरतः आरभ्य चराचरं यावत् प्राणिनः परोपकारिणो भवन्ति, येन परस्परं प्रेम वर्धते, किन्तु सन्ति केचन ये परोपकारपरायणेष्वपि कृतघ्नतामाचरन्ति तेषां विषये कश्चनकविः सोच्छ्वासं कथयति—

उपकारिणि विश्रब्धे शुद्धमतौ यः समाचरति पापम्।
तं जनमसत्यसन्धं भगवति वसुधे कथं वहसि॥

किमधिकं विस्तरेण सतां मार्गमाश्रित्य सर्वैः परोपकारपरायणैरेव सर्वदा भवितव्यम्। य इत्थमाचरति तस्य सर्वत्र समादरो भवति आध्यात्मिकं सुखं च स लभते। तद्विपरीतमाचरणं लोके हास्यास्पदम् अपमानजनकञ्च भवति। अतः क एतादृगाचरणं करिष्यति येन स्वकीयापमाननासम्भवेत्। अत्र ग्रन्थकृदाशयः—

कूपमण्डूकपन्निन्द्याः सदा स्वार्थपरायणाः।
परोपकारसक्तान्ताः पुरुषा देवसन्निभाः॥

## त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले,
## धैर्य-धना हि साधवः
## धीरा धैर्यधुरन्धराः

मानवः भावनाप्रधानः प्राणो भवति। सः सुखे सुखी दुःखे च दुःखी भवति। एषा स्थितिः सर्वसाधारणमानवेषु विशेषणावलोक्यते। ये मनस्विनो भवन्ति ते तु धैर्यधना एव कथ्यन्ते। धैर्यं विपत्तौ मानवान् मातेव रक्षति, सुहृदिव हितकार्येषु नियुङ्क्ते किमन्यत् तेषां प्राणान् अपि पाति, 'चक्रवत् परिवर्तन्ते दुःखानि च सुखानि च' सूक्तिमिमां हृदि सम्यग् विचार्य धैर्यमभ्यसन्तः सहसा दुस्तरं विपत्सागरं तरन्ति। साहसश्रीसमृद्धानां धीरधौरेयाणां लोकोत्तराणि चरितानि अद्याऽपि सञ्जीवयन्ति अल्पप्राणान्। भगवतो रामचन्द्रस्य राज्याभिषेक-वनगमन-वृत्तान्तश्रवण-

कालिकवर्णनमनुसृत्य रामायणे निबद्धमिदं मंगलाचरणम् अस्मान् प्रबोधयति यद् विधुरेऽपि काले महतां धैर्यच्युतिर्न भवतीति। तद्यथा—

प्रसन्नतां या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले वनवासदुःखतः।
मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदाऽस्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा॥

यदा श्रीरामो राज्याभिषेकसमाचारं श्रुतवान् न तदा हर्षातिरेकेण उच्छलितुमारब्धः, तदनन्तरं यदा वनगमनात्मकं पितुरादेशं शुश्राव न तदा विषण्णो भूत्वा रुरोद। श्रीरामचन्द्रस्य चरित्रमेतद् अस्मान् प्रत्याययति यन्महतामादर्शः सदाऽनुकरणीय इति। भावमिमं परिपोषयद् अपरमपि पद्यम्पुरस्क्रियते—

उदेति सविता ताम्रस्ताम्र एवास्तमेति च।
सम्पत्तौ च विपत्तौ च महतामेकरूपता॥

अत्र 'महतामेकरूपता' धैर्यस्यापरपर्यायत्वेन निर्दिष्टा विलसति।

यद्यपि धीरधुरन्धरा अपि धैर्यच्युतमतयो दृश्यन्ते विपदि, तेषां वर्णनं समर्थनञ्च कुर्वता कविताकामिनीकान्तेन कालिदासेन निर्दिष्टम् इन्दुमतीविरहे राज्ञः अजस्य स्वरूपं रघुवंशमहाकाव्ये वियोगिनीवृत्तेन—

विललाप स वाष्पगद्गदं सहजामप्यपहाय धीरताम्।
अभितप्तमयोऽपि मार्दवं भजते कैव कथा शरीरिणाम्॥

रघुवंशकुलप्रदीपः अजः सहसा स्वपत्न्याः प्राणच्युतिं वीक्ष्य विलपितुमारब्धः। धीरोदात्तस्य तस्य विलापं वर्णयन् कविः स्वयमेव समादधाति एवम्प्रकारेण—यदि निश्चेतनो लोहगोलकोऽपि सन्तापाद् मृदुतां भजते तर्हि सन्तप्तचेतसां सचेतसां का स्थितिः सम्भवेत्। इत्थं तस्य विलापादिकं वर्णयन्नपि कालिदासः तस्य राज्यसञ्चालनादिकृत्यजातेषु धैर्यधुरन्धरतां पदे-पदे प्रशशंस। तस्य तु प्रियावियोगजनितः प्रलापादिकः क्षणिक एव आसीत्, तात्कालिकी सर्वेषां मनसः स्थितिः तथैव भवतीति समर्थितः।

मूढपुरुषाणां स्थितिस्तु सर्वथा एतद्विपरीताऽवलोक्यते, ते स्वल्पेऽपि कष्टे आत्मघातं, विषभक्षणं वा समाचरन्ति येन ते निष्प्राणतां यान्ति, न तेन ते प्रेत्य चामुत्र च शान्तिं लभन्ते। एतादृशीं चर्चामेव वयं बाणभट्टस्य कादम्बर्यां महाश्वेता-प्रबोधनावसरे युवराजस्य चन्द्रापीडस्याप्यवलोकयामः। पुण्डरीकस्य मरणानन्तरं यदा चन्द्रापीडः तथाविधां तपस्यन्तीं

यौवनोद्गमलावण्यसमेधितशरीरां महाश्वेतां पश्यति तदा सः त विश्रम्भाऽऽलापैः स्वागतप्रकारैश्च सञ्जातोत्साहः ताम्परिपृच्छति—

देवि ! किं कारणं यत्सुखोपभागसमये भवत्या दुष्करं तपः तप्यते । य स्याद् उचितं तर्हि मत्कुतूहलप्रशमनाय किमपि निर्दिशतु भवती । इ तस्य निवेदनमाकर्ण्य सा सर्वमवर्णयत् । अन्ते च सा यदा मुक्तक रोदितुमारब्धवती तदा चन्द्रापीडः तस्याः प्रबोधनार्थं काश्चित् पौरा कीगाथाः श्रावयितुमारेभे । मरणाय कृतनिश्चया सा ताभिः कथं कथं मनसि धैर्यं बबन्ध । तस्य धैर्यस्यैव प्रभावेण स्वल्पैरेवाहोभिः सा वैशम यनरूपिणं पुण्डरीकं पतिरूपेण लेभे । सत्यमिदमुक्तं यत् केनापि क चिदपि धैर्यं न त्याज्यं निजसमृद्धिमभिवाञ्छता पुरुषेण, धैर्यधारं बहवो मानवा विविधान् लाभानलभन्त । प्रायशो युद्धभूमौ स एव विज श्रिया परिवारितो भवति यो धैर्यं न जहाति । विशेषतः विपत्तिस यादृक्साहाय्यं धैर्यं वितनुते न तादृक् कोऽप्यन्यः । अतएव सुप्रसिद्ध पद्यं धैर्यप्रशंसायां सर्वैः सुधीभिः सादरं स्मृतिपथं नीयते परोपदेशावसरे

त्याज्यं न धैर्यं विधुरेऽपि काले
धैर्यात् कदाचित् स्थितिमाप्नुयात् सः ।
जाते समुद्रेऽपि च पोतभङ्गे
सांयात्रिको वाञ्छति तर्तुमेव ॥

'धैर्यात् कदाचित् स्थितिमाप्नुयात् सः' पद्यांशस्यास्य अभिप्रायो जागर्ति यत् पुरुषैः प्रयत्नः कर्तव्यः, प्रयत्नमन्तरा न किमपि भवि शक्नोति । असम्भवे वस्तुनि कार्यसिद्धिस्तु सुतराम् असम्भवा भवति ए तथापि धैर्यपूर्वकं तत्प्रतीकारं कुर्वद्भिः प्रायो लभ्यते सफलता । एत अयमेव भावो यद् विपत्तौ धैर्यमेव साहाय्यं वितनुते नाऽपरः ।

## उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः,
## उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मीः,
## नास्त्युद्यमसमो बन्धुः

उत् = उन्नतये, अभ्युदयाय वा योगः = कर्मसु कौशलं, यः सम्पादय स उद्योगीति कथ्यते । एतेन सिद्ध्यति यत् उद्योगमन्तरा न कस्या

अभ्युदयः कल्पते, उद्योगिने एव पुरुषसिंह इति पदवीं ददति विद्वज्जनाः। सत्कर्मसु एव उद्योगसम्बन्धिश्रमः सुखावहो भवति। अतः पुम्भिः सत्कर्मसु यथाशक्ति उद्योगः कर्तव्यः। कदाचित् साक्षात्रूपेण कदाचिच्च परम्परया फलति आत्मकृतोद्योगः। यथा मार्जारः गृहस्थिनां धान्यादिनाशोन्मुखान् मूषकान् नैसर्गिकवैरेण निहन्ति, अतः स उद्योगस्य महिम्ना एव गोपालनं विनापि दुग्धपानं करोति। केचन विपक्षवादिनो विद्वांसः प्रजल्पन्ति यद् दैवं विना परिश्रमोऽपि न फलति। ते कथयन्ति यदि भाग्ये वस्तुलाभो नास्ति तदा तस्य अभिलाषुकः पुरुषः उद्योगं कुर्वन् मृत्युमुखेऽपि पतेच्चेत् तदापि तस्येष्टलाभो नैव भवति। विषयमिममधिकृत्य सुभाषितं केनापि कविवरेण तद्यथा—

पूर्वजन्मकृतं कर्म तद्दैवमिति कथ्यते।
तस्मात् पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्ध्यति॥
यथा ह्येकेन चक्रेण न रथस्य गतिर्भवेत्।
एवं पुरुषकारेण विना दैवं न सिद्ध्यति॥

अतः सिद्धं भवति यद् दैवमिति पदवाच्यं पूर्वजन्मकृतस्य उद्योगस्यैव रूपान्तरम्। अनेन स्पष्टं व्यज्यते उद्योगः अस्मिन् जन्मनि अपरस्मिन् जन्मनि च नूनं फलदायको जायते। अस्माकं तु द्रढीयान् विश्वासः यथा कुम्भकारः एकेन मृत्पिण्डेन यद् यदिच्छति तत्तन्निर्माय उपयुङ्क्ते एवमेव पुरुषः अपि उद्योगबलेन यत्किमपि कर्तुमभिलषति तत्सर्वं कर्तुं पारयति। पुरुषस्य षट्शक्तीनां वर्णनं कुर्वता नीतिशास्त्रेण सर्वासु शक्तिषु उद्यमशक्तेः प्राथम्येन वर्णनमुपन्यस्तम्। तद्यथा—

उद्योगः साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः।
षडेते यत्र वर्तन्ते तत्र देवः सहायकृत्॥

अर्थात् षण्णाम् एतेषां समवायः यस्मिन् पुरुषरत्ने विद्यते स एव देवकल्पः सन् भूमौ सर्वत्र चकास्ति, शत्रवः मित्राणि तटस्था अपि तं मुक्तकण्ठं प्रशंसन्ति किन्तु इमे लोकोत्तराः गुणाः सामान्यपुरुषेषु दृष्टिगोचरतां नैव यान्ति। विरला एव एभिरलङ्करणैः अलङ्कृताः क्वापि कदाचिदपि अवताररूपेण समुत्पद्यन्ते तेषाम् एव देवः अपि सहायतां विदधाति। अतः स्वकीयोत्कर्षं कामयमानैः पुरुषपुङ्गवैः उद्योगः समाश्रयणीयः।

उद्योगमन्तरा किमपि कार्यं कथमपि सिद्धिं न याति। एतदर्थमेव नीति निष्णातैः सूक्तम्—

उद्यमेन हि सिद्ध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः।
न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशन्ति मुखे मृगाः॥

अयम्भावः सति शक्तिसञ्चये यदि कोऽपि प्राणी तस्य सदुपयो न करोति तस्याभावे अभिलषितपदार्थस्योपलब्धिः न कदापि सम्भव तदर्थं प्रयत्नः करणीय एव। यथा तिलेषु तैलं भवति इति को नाम जानाति, परं तिलेभ्यस्तैलं प्राप्स्यामः इति कथनेनैव तैलप्राप्तिः सम्भ किम्? यद्यसम्भवा तर्हि यथाशक्ति तत्र प्रयतनीयं स्यात्। पश्य कार्पासस्फीतायाम् उपधानैः परिवृतायाम् आसन्दिकायाम् आदिवस उपविष्टानां व्यापारप्रवणानां वणिजाम् उद्योगमन्तरा शरीरस्य का द भवति। लम्बोदरत्वाद् देहस्थौल्यात् ते उत्थातुमपि न पारयन्ति, प्र दिनं चूर्णादिसेवनेन जठराग्निं प्रज्वालयन्ति, शौचालयेषु प्रवि मलावरोधेन खसूचीवद् व्यवहरन्ति, रसवतीं प्राप्ताः अरसिका इव किमपि भोक्तुमुत्सहन्ते, यानमन्तरा इतस्ततः गन्तुमपि सर्वथा असम भवन्ति। कथमियं तेषां दशा इति पृच्छ्यते चेत् तर्हि समेषामेक कारणं 'शारीरिकोद्योगस्य सर्वथा तिरस्करणम्'। अतः प्रतिदिनं सर्वै स्वकार्यं स्वकीयशक्त्यनुसारं स्वयमेव कर्तव्यम्, अनेन शरीरे श सञ्चारो भवति। अत्र विषये एका सुप्रसिद्धा सूक्तिः पुरस्क्रियते—

आलस्यं हि मनुष्याणां शरीरस्थो महान् रिपुः।
नास्त्युद्यमसमो बन्धुर्यं कृत्वा नावसीदति॥

संसारे सुखहेतुः उद्यमः, दुःखहेतुः आलस्यम्, अतो यद् यस्मै रो तत्तेनाङ्गीकरणीयम्। अस्माकं मते तु सर्वैरपि आबालवृद्धैः परिश्रमि र्भाव्यम्। अवलोकयन्तु पञ्चवर्षदेशीयम् औत्तानपादिं ध्रुवं यः स्व प्रभावेण महतां मूर्ध्नि चिराय राजते तथा परेषां दुर्लभं च पदं प्राप्तवा अन्यदपि उदाहरणमेकं समेषामधीतीनां पुरः प्रस्तूयते—

योजनानां सहस्रन्तु शनैर्गच्छेत् पिपीलिका।
अगच्छन् वैनतेयोऽपि पदमेकं न गच्छति॥

पद्यमिदं निर्दिशति यत् सत्यामपि कार्यशक्तौ यः पुमान् आलस्य

वशं याति सः स्वल्पशक्तिमद्भ्योऽपि पराभवं प्राप्नोति। अतः यथाशक्ति प्रयत्नपूर्वकमुद्योगः कर्तव्यः। अत्र श्रीमता कृष्णमिश्रेण साधूक्तम्—

उद्योगिनं पुरुषसिंहमुपैति लक्ष्मी-
र्दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति।
दैवं निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्या
यत्ने कृते यदि न सिद्ध्यति कोऽत्र दोषः।

अस्यायम्भावः—लक्ष्मीः (धन-सम्पत्तिः) उद्योगशीलम्पुरुषमुपैति। ते अलसाः भवन्ति ये कथयन्ति यद् अस्माकं भाग्ये स्यात् तत्तु प्राप्यत एव। एषा धारणा सर्वथा व्यर्था। भाग्यं विहाय यथाशक्ति यत्नः कर्तव्यः, कृते यत्नेऽपि यदि कार्यसिद्धिर्न भवति तर्हि विचारणीयं यन्मत्कर्मणि का त्रुटिः समजनि। अन्ये इत्थं कल्पयन्ति यदि यत्ने कृते कार्यं न सिद्ध्यति तर्हि न कोऽपि दोष इति, एवं विचार्य सर्वैः सर्वसाहाय्यकरः उद्योगः समाश्रयणीयः। उद्योगिनमालोक्य सर्वेऽपि जनाः तत्र अनुरज्यन्ते, स्वास्थ्यलाभोऽपि भवति, स्वस्थपुरुषः सर्वाणि सुखानि उपभोक्तुम् प्रभवति। एतदर्थम् उद्योग एव सुखस्य प्रधानं साधनम्। अत्र मदीया धारणा—

उद्योगकर्मशीलस्य स्वास्थ्यं वित्तं सुखं सदा।
वर्धते तेन सम्मानं भवतीह न संशयः॥

●

## उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम्

आसीत् प्राचीनकाले गुरुपरम्परा राजपरम्परा च, यत्र गुरवः आचार्याः कुलपतयश्च सर्वदेशागतेषु छात्रेषु आत्मीयपुत्रवत् स्निह्यन्तः पाठयन्तिस्म इति। यथा गुरवः पाठनादिव्यवहारेषु तथैव राजानोऽपि पालन-पोषणादिषु व्यवहरन्तिस्म प्रजाभिः। इदमेव वर्णयता कविशेखरेण कालिदासेन स्वकीये रघुवंशमहाकाव्ये महाराजस्य दिलीपस्य प्रजापालनप्रकारः समुट्टङ्कितः—

प्रजानां विनयाधानाद् रक्षणाद् भरणादपि।
स पिता पितरस्तासां केवलं जन्महेतवः॥

केवलं दिलीपराज्ये एव नासीद् एतादृशी व्यवस्था, अपितु पुरा सर्वेऽपि राजानः स्वप्रजासु स्नेहव्यवहारं समाचरन्तिस्म। स एव तेषां सद्धर्मं

आसीत् । अयमेव भावः उपरितनस्य शीर्षकस्य । सङ्कीर्णां विचारधारां परित्यज्य यः सर्वदा सर्वत्र सर्वैः सह समानरूपेण व्यवहरति स एव परमोदारः कथ्यते एतादृक् परमोदारचेता पुरुषः सर्वेषां समभावेन हितकामनां करोति तदर्थं यतते च । एतादृशानाम् एव वदनकमलात् सहसा निःसरति जगन्मङ्गलात्मकमेतत् पद्यम्—

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥

एतस्य सर्वथा विपरीतं तेषां निन्द्यतमं चरित्रं भवति ये स्वार्थान्धीभूय आत्मानमन्धेतमसि पातयन्ति ते स्वार्थलाभाय एव प्रयतन्ते । इहलोकपरलोकयोरपि तेषां मनसि नास्ति भयं न च ते निन्दातो मरणाद् वा बिभ्यति । इतः परम् एका चरमा सीमा एतादृक्पुरुषाणामपि वर्तते। निरर्थकं स्वार्थलाभमन्तरापि परहितं विनाशयन्ति ते अनुदाराः । तेषां चरित्रवर्णनं कलङ्कमिव विज्ञाय सपदि दूरतः परित्यज्यते प्रबन्धेऽस्मिन् ।

अधिकांशतया साम्प्रतिकेषु मानवेषु या उदारभावना दृश्यते साक्षणिका अतएव सा किमपि प्रलोभनम्प्राप्य झटिति शशशृङ्गायते किन्तु ये कुलीनाः भवन्ति तेषु इयं स्थायिनी भवति । मानवानामपेक्षया अन्यत्र सांसारिक वस्तुषु 'वसुधैव कुटुम्बकस्य' भावना दृढतरा दृष्टिपथं याति । यथा—

अञ्जलिस्थानि पुष्पाणि वासयन्ति करद्वयम् ।
अहो सुमनसां प्रीतिर्वामदक्षिणयोः समा ॥

पद्येऽस्मिन् सुमनसाम् पुष्पाणां किंवा सुष्ठु मनः येषां ते सुमनसः तेषाम्, उभावप्यर्थौ अत्र चारितार्थ्यं लभेते । तदनन्तरं वामदक्षिणयोः समा अयमपि पद्यांशः परकीये आत्मीये च एनमपि अर्थविशेषं व्यञ्जयति । अन्यदपि दृष्टान्तं परिशीलयन्तु—

अरावप्युचितं कार्यमातिथ्यं गृहमागते ।
छेत्तुमप्यागते छायां नोपसंहरते द्रुमः ॥

यः वृक्षं सिञ्चति, परिवर्धयति किं वा यश्च तं कुठारेण कर्तयति; उदारचेता वृक्षः, उभाभ्यामपि समभावेन छायाप्रदानं करोति, एतादृशी उदारता विरलेष्वेव मनुष्येषु सूक्ष्मेक्षिकया विलोक्यते । उदारचेतसः ये उपकारिषु सदया भवन्ति तथैवानुपकारिष्वपि । उदारचरितानां चरि

वर्णयता कविना चन्दनान्योक्तिवर्णनव्याजपुरःसरं किमपि अपूर्वं चित्रणमुपन्यस्तम्—

किमत्र चित्रं यत् सन्तः परानुग्रहतत्पराः ।
नहि स्वेदहशैत्याय जायन्ते चन्दनद्रुमाः ॥

अन्यदपि महतां व्यवहारप्रकारो वर्ण्यते—

यथा चित्तं तथा वाचो यथा वाचस्तथा क्रियाः ।
चित्ते वाचि क्रियायाञ्च महतामेकरूपता ॥

इयमेकरूपता तेषां समेषां प्राणिनां कृते सदा समत्वं भजते । हिमालयात्समुद्रपर्यन्तं यावन्तः प्राणिनः सन्ति तान् सर्वान् एककुटुम्बरूपेण स एव द्रष्टुं पारयति यः सर्वदा उदारमना भवेत् । अनुदाराः पुरुषाः क्षुद्रस्वार्थपरवशा भूत्वा विवदन्ते, कलहायन्ते, न्यायालये वादमुपस्थापयन्ति, केशाकेशि, दण्डादण्डि युद्धमारभन्ते, चौर्यं, लुण्ठनं वा समाचरन्ति, अशान्तेः वातावरणं समुत्पाद्य स्वयम् अशान्ता भवन्तः परानपि परितापयन्ति, सर्वं वस्तुजातम् आत्मीयमिति मत्वा कुकृत्यशतैः कुलजान् कलङ्कयन्ति । एतद् विपरीतं सताम् महताम् उदारचरितवतां कृत्यजातं भवति । तदेव सङ्क्षेपेण—

करे श्लाघ्यस्त्यागः शिरसि गुरुपादप्रणयिता
मुखे सत्या वाणी विजयि भुजयोर्वीर्यमतुलम् ।
हृदि स्वस्था वृत्तिः श्रुतमधिगतैकव्रतफलं
विनाप्यैश्वर्येण प्रकृतिमहतां मण्डनमिदम् ॥

इत्थं विविच्य शीर्षकस्थां सूक्तिं समग्रेण पद्येन विवृण्वन् विरंस्यते विस्तरभयात् । तत्पद्यं यथा—

अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम् ।
उदारचरितानान्तु वसुधैव कुटुम्बकम् ॥

अर्थात् कुलीनैः पुम्भिः स्वार्थ-परार्थभावनाः समुत्सार्य निखिलायामपि वसुधायाम् सर्वेषु यथोचितं पितृ-मातृ-बन्धु-भगिनीप्रभृतिभावना विधातव्येति । यतः कोऽपि कदापि कस्मैचन न द्रुह्येत्, क्रुध्येत्, ईर्ष्येद् च ।

## न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः, न निश्चितार्थाद् विरमन्ति धीराः,

धैर्यधनाः पुरुषा यत्किमपि कर्तुमुत्सहन्ते तत्सर्वं सुविचार्य एव, अत स्ते तत् प्रारभ्य आसमाप्ति तदर्थं प्रयतन्ते । यद् यद् आश्चर्यकरं वस्तु ज ति दृशोः पुरतः आयाति तदखिलमपि धीरपुरुषप्रयत्नप्रसूतमेव । पर्य लोचयन्तु प्राचीना ऐतिहासिकघटनाः तत्र यद् यद् प्रशस्यतमं चरितं श्यते तस्य श्रेयो धीरेभ्य एव प्रदीयते । पुत्रेषु पितुः सर्वतोमुखी प्रति भवति, पुत्रस्य च मातापित्रोः आज्ञापालनं परमं कर्तव्यमिति जान रामभद्रेण राज्यं परित्यज्य चतुर्दशवर्षपर्यन्तं वनवासरूपमादेशं न्याय मिति अङ्गीकृतं तदनु वनं वव्राज स धीरः सीतया लक्ष्मणेन च सह । तेन अवज्ञापक्षः समाश्रितः, न चापि न्यायालये वाद उपस्थापितः, अपि तेन प्रसन्नतापूर्वकं सा आज्ञा उररीकृता ।

सुग्रीवाङ्गदादिभिः प्रेरितो हनुमान् यदा सीतामन्वेष्टुं गन्तुमना अ वत् तदा कतिपयैः कपिप्रमुखैः स पृष्टः—भवान् सीतान्वेषणाय गच्छ यदि तत्र सीतायाः प्राप्तिर्न भवेत् ? तदा उत्तरयति मारुतिः—निखि लङ्काम् अन्विष्य यदि मातरं सीतां न लप्स्ये तदा अनेनैव वेगेन पाता म्प्राप्य तत्र द्रक्ष्यामि तत्रापि ताम् अलभमानोऽहं दिवमुपयास्ये ततो यदि विफलप्रयत्नः स्यां तदनु राक्षसराजं दशकन्धरं बद्ध्वा भवतां आनयिष्यामि । अहो लोकोत्तरसाहसवतां धीराणां चरितानि ।

महाराजो दशरथः विश्वामित्रं प्रतिश्रुतवान् यत्किमपि भव याचिष्यते तदहं दास्यामीति, तत्पश्चात्, स्ववचनस्य पूर्तये प्राणप्रि तनूजौ रामलक्ष्मणौ तस्य साहाय्याय अनिच्छन्नपि स ददौ । सत्यवादि युधिष्ठिरस्य वचनात् पाण्डवैर्वनवासोऽङ्गीकृतः, बहूनि कष्टानि स वाऽपि यापितश्च पूर्णोऽवधिः किन्तु सत्यवचनरक्षणरूपात् न्याय्य पथः ते धीराः विचलिता न बभूवुः । स्मरत यूयं पार्थसूनुम् अभिमन् 'आहूतो न निवर्तेयम्' इति उद्घोष्य कौरवव्यूहेन रचितस्य चक्रव्यूह विभेदनाय गर्भकालिकशिक्षया गर्वितः स युयोध साहसेन । महाराजो ह श्चन्द्रः सत्यवचनं प्रतिपालयन् स्वकीयधीरतायाः पुष्कलं परिचयं प्रादा

एवमेव महाराणाप्रतापो घासस्य रोटिकाः खादतः स्वकीयबाल

अवलोक्याऽपि धर्मपरिवर्तनरूपमन्याय्यं मार्गं न स्वीचकार। ये केचन महात्मानः महापुरुषाः सम्भवन्ति ते स्ववचनस्य प्रतिपालनं प्राणपणेनाऽपि कुर्वन्ति एव। अतएव सूक्तिरियं सुधीसमाजे सुप्रसिद्धा—

विदुषां वदनाद् वाचः सहसा यान्ति नो बहिः।
याताश्चेन्न पराञ्चन्ति द्विरदानां रदा इव॥

किमधिकेन धीराः पुरुषाः स्वकीयनिश्चितार्थात् कदापि विचलिता न भवन्ति, धनव्ययेन, शारीरिकश्रमेण, किं च प्राणव्ययेनापि तस्य सिद्ध्यर्थं सर्वदा यतन्ते। केचन एतद् विरुद्धाचरणवन्तोऽपि दृश्यन्ते, तेषां वर्णनमिहोपन्यस्यते—

प्रारभ्यते न खलु विघ्नभयेन नीचैः
प्रारभ्य विघ्नविहता विरमन्ति मध्याः।
विघ्नैः पुनः पुनरपि प्रतिहन्यमानाः
प्रारभ्य चोत्तमजना न परित्यजन्ति॥

पद्येऽस्मिन् नीचमध्यमोत्तमपुरुषाणां क्रमिकः परिचयः समुपस्थापितोऽत्रलोक्यते। पर्वतराजपुत्र्याः पार्वत्यास्तपश्चरणमपि एतस्यैव निदर्शनम्। या मातुः मेनकायाः निषेधाऽनन्तरमपि वर्षवातातपसहानि तपांसि तेपे, ततः सदाशिवं पतिरूपेण लेभे, तपसः काले महर्षीणां वचनानि विघ्नरूपेण प्रतिपन्नानि तथाऽपि सा न विरराम तपश्चरणात्। प्रकृतिः स्वनियमान् उल्लङ्घ्य कामं प्रवर्तेत किन्तु प्रतिज्ञारूपेण सज्जनानां यद् भाषितं भवति तन्न व्यभिचरति। एतद् विषये सुभाषितमिदं सुप्रसिद्धम्—

उदयति यदि भानुः पश्चिमे दिग्विभागे
प्रचलति यदि मेरुः शीततां याति वह्निः।
विकसति यदि पद्मं पर्वतानां शिखाग्रे
न भवति पुनरन्यद् भाषितं सज्जनानाम्॥

सत्यमिदं सज्जनाः भीष्मपितामहवत् स्वकीयां प्रतिज्ञां निर्वहन्ति। धीरा इदमपि न विचारयन्ति यदस्मिन् कर्मणि लोकः प्रशंसको भविष्यति निन्दको वा एवं लोकापवादप्रशंसादिचिन्तां परित्यज्य स्वकर्मणि संलग्नाधीराः कार्यजातं यथा कथञ्चित् साधयन्त्येव। विषयमिमं समर्थयता भर्तृहरिणा सूक्तम्—

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम् ।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः ॥

अतः सर्वैः तुच्छत्वम् उच्छृङ्खलत्वञ्च विहाय धीरता समाश्रयणीय तदनु न्याय्यः पन्था आश्रयणीयः। यतोहि 'न निश्चितार्थाद् विरमन्ति धीराः' सूक्तिरेषा चरितार्थतां यायात् । धीरत्वे सम्मानं सुखञ्च पदे पदे प्राप्यते । क एतादृशः दुर्भगः स्यात् यः सम्मानसुखभूमिं धीरतां परित्यज्य अधैर्यं वृणुयात् ।

•

## हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः, अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः,

गुरूणामुपदेशाः, राज्ञां दण्डनीतिः, चिकित्सकानां कटुतिक्ताद्योषधं नूनं पर्यन्ते हितावहा भवन्ति किन्तु तेषु कठोरता क्रूरता, कटुकता, स्व पदं निदधाति प्रारम्भे। अस्मिन् संसारे चाटूक्तिभिः स्वकार्यसाधकानां प्राशस्त्यं वर्तते ते निन्दापात्रचरित्राः ये स्वकीयाभिश्चाटूक्तिभिः स्वकीया धिकारिणामहितं सम्पाद्य निजलाभाय यतन्ते। नीतिविशारदेन महा कविना भारविणा किरातार्जुनीये महाकाव्ये तदित्थं निर्दिष्टम्--

'स किं सखा साधु न शास्ति योऽधिपं,
हितान्न यः संशृणुते स किं प्रभुः।'

स नास्ति उत्तमः सखा यः अनुचितकर्मणि प्रवृत्तं राजानं नीतिमुख राभिः कठोराभिर्वाग्भिः सम्यक् प्रकारेण नोपदिशति, सः कुत्सितो राजा यो हितवादिनो मित्रस्य सारगर्भाणि उपदेशवाक्यानि नाकर्णयति यावन्ति दुराचरणानि लोके दृष्टिपथमायान्ति तावन्ति सर्वाण्यपि क्षणि काऽऽनन्दाय कल्पन्ते, अन्ते च भृशं दुःखमयानि भवन्ति। अतएव तेषां परिहारार्थं शास्त्रेषु उपायाः निर्दिष्टाः सन्ति। यथोक्तं गीतायाम्--

ये तु संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते ।
आद्यन्तवन्तः कौन्तेय न तेषु रमते बुधः ॥

अत एते परिहार्या भवन्ति। ये परोत्कर्षासोढा भवन्ति ते नृपान् कुपथेषु प्रेरयित्वा तत्र तान् अभ्यस्तान् विधाय तैः सह स्वयमपि क्षणभङ्गुरान् आनन्दान् भुञ्जन्ते, ततो नृपैः सह तेषामपि कतिपयैरेवाऽहोभिर्नूनम् अधः पतनं भवति। अत एतादृक्कुत्सितमित्रैः सह सङ्गं परिहृत्य ये श्रुतिकटु किंच हितं मितञ्च वदन्ति तेषां निर्देशाः सर्वदा सर्वात्मना पालनीयाः। प्रसङ्गेऽस्मिन् सदसतां कीदृग्रूपं भवतीति पद्यमुखेन निर्दिश्यते—

नारिकेलसमाकारा दृश्यन्ते भुवि सज्जनाः।
अन्ये बदरिकाकारा बहिरेव मनोहराः॥

एतस्यायमभिप्रायः यथा जटाभिः प्रावृतन्तदनु कठोरावरणेनाऽऽवृतं नारिकेलफलम् आस्वाद्यतां याति स्नेहपूर्णञ्च भवति, तदपरं बदरफलं बाह्यत एव सुन्दरं दृश्यते नाभ्यन्तरतः। अतएव सुहृदां हितचिन्तकानां वचांसि नारिकेलफलवद्वर्णितानि। ये परेषाम् अनिष्टं वाञ्छन्ति तेषाम् उक्तयो बदरफलवद् बहिरेव मनोहराः कल्पन्ते। एतदर्थं ताः परित्याज्या इति शास्त्रसम्मतम्। व्यवहारकालेऽपि स्वकार्यसाधनार्थं मधुरवाचः पुरुषाः प्रायः सुलभा भवन्ति। हितवादिनस्तु महता सौभाग्येन यदा कदा लभ्यन्ते, तेऽपि द्वित्रा एव।

यदा त्रैलोक्यविद्रावणो रावणः पञ्चवटीतः सीताम् अपहृत्यलङ्काम्प्राप, तदा तस्यैव लघुभ्राता बिभीषणः सामवचनैस्तम् उपदिष्टवान् किन्तु कालप्रेरितो रावणो न क्विमपि विचारयामास, अपितु तं रोषरूक्षेक्षणैर्निरीक्ष्य भर्त्सितवान्, त्वं मदीयो भ्राता मदाश्रये सुखं निवससि, भ्रातुः पक्षं परित्यज्य तव रतिः शत्रुपक्षे कथमभवत् इति। तदा बिभीषणः प्रणतकन्धरः उत्तरयति—यद्यपि मद्वचनानि अप्रियाणि सन्ति तथापि भवतो हितकराणि किन्तु कालप्रेरितोऽधर्मनिरतो रावणो न किमपि कर्णे कृतवान्। यतो हि सत्यमुक्तं नीतिविद्भिः—

"अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।"

वेद-शास्त्र-नीतिवाक्यानि प्रभुसम्मितानि कथ्यन्ते, अतएव तानि आदेशं ददति, सोऽयमादेशः कटुकौषधवद्भति, यथा निबन्धेऽस्मिन् प्राक् प्रपञ्चितम्। प्रायः सर्वेऽपि अपरिष्कृतधियः पुरुषाः तादृशानि वाक्यानि श्रोतुं श्रुत्वा च व्यवहर्तुं नैव यतन्ते। एतानि अनाचरतां का दशा भवति विषयेऽस्मिन् इतिहासः साक्षी। यथा—अगणिता राजानो रङ्कतां, धनिनो

निर्धनतां, सुजना दुर्जनतां, राज्यानि राष्ट्राणि च काननतां, सच्चरित्रा दुश्चरित्रतां, पतिव्रताः स्वैरिणीभावं मूर्खाः परोपदेशकुशलतां, पण्डिता अयथार्थवक्तृतां च गता इति सर्वे पश्यन्ति, पश्यन्तोऽपि नेत्रनिमीलनं विधाय सत्पथात् प्रच्यवन्ते, येन कतिपयैरेवाह्नोभिः बहुविधानि कष्टानि उररीकृत्य नामशेषतां यान्ति। इत्थं प्रतिदिनं पश्यन्नपि लोकः स्वाज्ञानवशान्नीति वचनमेतन्नाङ्गीकरोति "हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः"। उपर्युक्त समस्तं वर्णनं समादधता केनापि कविना भङ्ग्यन्तरेण तथ्यमिदमुक्तम्–

मनीषिणः सन्ति न ते हितैषिणो हितैषिणः सन्ति न ते मनीषिणः।
सुहृच्च विद्वानपि दुर्लभो नृणां यथौषधं स्वादु हितं च दुर्लभम्॥

अतः सर्वैरपि स्वहितचिन्तकानां वचःसु तत्परैर्भाव्यम्। यद्यपि प्रारम्भे तेषामादेशाः कष्टकरा इति प्रतीता भविष्यन्ति तथापि अन्ततोगत्वा ते सुखस्य, यशसः, सम्मानस्य च कारणतां यास्यन्तीति निश्चप्रचम्। एतदर्थमेव किरातार्जुनीयगतं पद्यमेतत् शीर्षकरूपेण प्रपञ्चितम्––

क्रियासु युक्तैर्नृप! चारचक्षुषो
न वञ्चनीया प्रभवोऽनुजीविभिः।
अतोऽर्हसि क्षन्तुमसाधु साधु वा
'हितं मनोहारि च दुर्लभं वचः'॥

## सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः

सत्वगुणप्रधाना हि सज्जना भवन्ति। तेषां मनसि यत्र सन्देहोत्पत्तिः जायते सत्स्वपि प्रत्यक्षानुमानोपमानशब्दप्रमाणेषु तत्र ते स्वान्तःकरणप्रवृत्तिभिः तस्य सन्देहस्य निराकरणं समाधानं वा कुर्वन्ति। ऐतिहासिकदृष्ट्या प्रस्तुतशीर्षकस्य सम्बन्धीनि अनेकानि आख्यानानि उदाहरणरूपेण उपलभ्यन्ते। तत्र प्रथमं श्रीरामचन्द्रस्य स्वयंवर-प्रसङ्गसम्बन्धिनी घटना प्रस्तूयते––गृहारामे सखिभिः सह विहरन्तीं जनकजां विलोक्य रामस्य मनस्तत्रान्वरज्यत, सोऽपि विचारयामास कथं मम मनः एतस्यामपरिचितायां संलग्नमिति। तस्य समाधानं स्वयंवरान्ते स्वयमेव सम्बभूव। अपरोऽपि दृष्टान्त उपस्थाप्यते––यदा हनुमान् सीतां विचेतुं रावणस्यान्तःपुरम्प्रविश्य शयाना नग्ना अर्धनग्ना वा राजस्त्रियः पश्यन् न सीतामल-

भत तदा तस्य मनः खेदमापन्नम्, यन्मया ब्रह्मचारिणा कथं परदारा अवलोकिता इति, तदनन्तरमेव स निरणैषीत् सीतां विचिन्वता मया या राजस्त्रियो दृष्टास्तत्र मदीया मातृबुद्धिरासीत्, अतः तन्न दोषाय कल्पते, अपरञ्च ता अवलोक्य मन्मनसि कोऽपि विकारो नोत्पन्नः, अतो मयि पातकपातः न सम्भविष्यति। इति तस्यान्तःकरणवृत्तिः तमाश्वासयति। यथोक्तं वाल्मीकिना स्वकीये रामायणे--

कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः।
न तु मे मनसः किञ्चिद् वैकृत्यमुपपद्यते॥
मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने।
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम्॥

अस्य हनुमद्वचसः समर्थनम् अन्यत्रापि दृश्यते--'मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः' जितेन्द्रियाणां वशीकृतमनसां पुरुषाणां हृदि यद्-यद् विचारजातमुत्पद्यते तत्सर्वं सत्वोत्कर्षपुरःसरं प्रमाणरूपतां बिभर्ति।

द्रौपद्याः परिणयप्रसङ्गेऽपि यदा कुन्त्या आदिष्टम्, 'यत् त्वया लब्धं तद् भैक्ष्यवद् विभज्य भुज्यताम्'। तदा वेदव्यासः सर्वान् पप्रच्छ, तेषु धर्मराड्युधिष्ठिरस्य वचनानि उल्लेख्यतामर्हन्तीति, अत एवात्र समुद्ध्रियन्ते महाभारतात्--

न मे वागनृतं वक्ति नाऽधर्मे धीयते मतिः।
वर्तते हि मनो मेऽत्र नैषोऽधर्मः कदाचन॥

अत्रापि युधिष्ठिरवचनेषु स्वान्तःकरणवृत्तेरेव स्वरूपं प्रमाणतां गतम्। एतादृशी एव स्थितिः दमयन्त्याः स्वयंवराऽवसरेऽपि दृश्यते। नलाकृतिधारिणाम् इन्द्रादीनां पञ्चानाम्मध्ये को वास्तविको नल इति विकल्पपरवशा दमयन्ती अन्तःकरणप्रवृत्तिभिः मनः स्थिरीकृत्य यं वव्रे स एव तस्या हृदयेश्वरो नल आसीत्।

ये ये महापुरुषाः यदा यदा जन्म अगृह्णन् यदि वयं तेषां जीवनचरित्रं पश्यामः तर्हि अयमेव निष्कर्षः हस्तगतः भविष्यति यत् ते प्रमाणान्तराणामुपेक्षां विधाय आत्मनः अन्तःकरणवृत्तेः प्रेरणानुसारमेव सर्वं समाचरन्ति। एतादृङ्महापुरुषाणां विषये एव एषा सूक्तिः ख्यातिगता विराजते। तद्यथा--

"केनापि देवेन हृदि स्थितेन यथा नियुक्तोऽस्मि तथा करोमि"।

नूनं स हृदि स्थितो देवः सत्वगुणभूयिष्ठः आत्मा एव। यः पुरुषान् सत्पथे प्रवर्तयति सर्वदा।

इतः परं यदर्थं सूक्तिरियं परिकल्पता कालिदासेन तस्य क्रम प्रस्तूयते। एकदा महाराजो दुष्यन्तः मृगयार्थं विहरन् मृगमेकमवलोकयामास। स आश्रममृगः धनुर्वाणधारिणं तमवलोक्य त्वरया उत्प्लुत्य आश्रमाभिमुखं समायातः, तमनुधावन् दुष्यन्तोऽपि महर्षेः कण्वस्याऽऽश्रमं प्राप। तत्र प्रियंवदानुसूयाभ्यां सह विहरन्तीं शकुन्तलां पश्यत एव दुष्यन्तस्य मनो विकारतां गतम्। तदा सः कथञ्चिद् धैर्यमवलम्ब्य विचारयामास, अहं तावत् क्षत्रियः, इयं ब्राह्मणदुहिता तर्हि कथं मम चेतसि विकारसञ्चारः समुद्भूतः? तदनु अन्तःकरणवृत्तिभिर्लब्ध विश्वासः स निजगाद—

असंशयं क्षत्रपरिग्रहक्षमा यदार्यमस्यामभिलाषि मे मनः।
सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः॥

नूनम् इयं क्षत्रियकुलजानां विवाहयोग्या भवेद् अन्यथा सर्वथा उच्चादर्शयुक्तं मे मनः कथमस्याम् अभिलाषि भवेत्। यतो हि मे मनः अत्रानुरज्यते, इदमेव प्रमाणं यदियं ब्राह्मणतनूजा नाऽस्तीति। तदनन्तरं जाते निर्णये पुनर्गदति स एव—

भव हृदय सकामं सम्प्रति सन्देहनिर्णयो जातः।
आशङ्कसे यदग्निं तदिदं स्पर्शक्षमं रत्नम्॥

कण्वस्य पालितां शकुन्तलां तत्सुतात्वेन कल्पयतो नृपस्य दुष्यन्तस्य मनसि यः सन्देहलेश आसीत् तस्य समाधानं तस्यैव मानसिकवृत्ति निश्चयेन सम्बभूव। एतादृशो तत्वनिर्णायिका अन्तःकरणवृत्तिः केवलं सतामेव भवति नत्वसताम्। अत एव सूक्तं कालिदासेन—'सतां हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्तःकरणप्रवृत्तयः", इति।

●

## सहसा विदधीत न क्रियाम्

अविचारितेऽर्थे सहसा शब्दस्य प्रयोगः कोशकारैराम्नातः। अतः महाकविना भारविणापि नीतिवाक्यरूपेण पद्यांशोऽयमुपन्यस्तः। एतत् पद्यसम्बन्धिनी एका कथा अनुश्रूयते। तद्यथा—रविरिव भास्वतो भा

प्रारम्भिकं जीवनं दारिद्र्यपरिपूर्णमिति ऐतिहासिकानाम्मतम्। प्रायो बुद्धिजीविनां समेषां स्थितिरेतादृशी एव भवति, यतोहि यदवधि तेषां प्रतिभायाः सम्मानयिता कोऽपि राजा धनिको वा न भवेत्, अर्थसाध्यं सांसारिकसुखं कुतः सः लभेत। अस्यां स्थितावपि भारविः काव्यरसोदधौ निमग्नो धनचिन्तापराङ्मुख एवासीत् किन्तु तदीया पत्नी यदा कदा सर्वदा वा स्वकीयवाग्वाणैस्तं विध्यन्ती न शान्तिं लेभे। तस्या वाग्वाणैर्जर्जरीभूतचेता भारविः स्वकीयाया अकर्मण्यताया अनुभवमकरोत्। ततश्चचाल स राजाश्रयाद् धनमुपार्जयितुम्। यावत् कियद्दूरं, याति तावत् लतामण्डपैः परीतं पुष्पितवृक्षततिपरिवारितं, गगननीलिम्ना-नीलीकृतम्, जलेन आपूर्णमपि रिक्तमिव भासमानं, विकसितसरसिजसहस्रैः सुवासितं, मधुलोलुपमधुपैर्गुञ्जितं, खगकुलसङ्कुलं, लोकोत्तरानन्ददायकं च सरोवरमेकमवलोक्य विस्मृतनिजलक्ष्यः श्रान्तश्च भारविः विशश्रमिपुस्तत्रैवावस्थितः। तदा कविपुङ्गवस्य वैखरी प्रस्तुतपद्याकारतया मुखरिता बभूव। तदेतदविकलं पद्यं पाठकानां पुरः प्रस्तूयते—

सहसा विदधीत न क्रियामविवेकः परमापदां पदम्।
वृणते हि विमृष्यकारिणं गुणलुब्धाः स्वयमेव सम्पदः॥

यदा कविरयं स्वकीयमिदं पद्यं सानन्दं पठन्नासीत्, तदैव राजा विष्णुवर्धन आखेटाय निर्गतस्तत्रैवाऽऽयातः। कवेः सरलं, सरसं, नीतिरीतिस्फीतीकृतं पद्यमाकर्ण्य सादरं तत् पद्यमादाय, कवये स्वराजधानीमागमनाय सादरं निवेद्य च स्वयमपि स्वां राजधानीं प्रत्याजगाम। तत्रागत्य राज्ञा आदिष्टम् पद्यमिदं स्वर्णाक्षरैर्विलिख्य सपदि आनीयताम्; इति। ततः स्वर्णमयाक्षरेषु लिखितं तत् पद्यं महाराजेन स्वकीयशयनकक्षस्थ नागदन्तेऽवलम्बितम्। इतः कविशिरोमणिरपि जीर्णवस्त्राणि परिधाय राजद्वारं समायातः तदा तत्रत्यैर्द्वारपालैर्न्यक्कृतः सः तथा निराशो भूत्वा स्वगृहं परावृत्तः, यथा प्रायो वाह्याडम्बराभावे गुणिजनाः तिरस्क्रियन्ते राजभिः धनिकैर्वा। इत्थं व्यतीतेषु केषुचिद् दिवसेषु एकदा स विष्णुवर्धनः पुनरपि मृगयायै निर्गतः, यदा ततः परावृत्य रात्रौ स्वशयनगृहं प्रविशति तदा सः किं पश्यति यत्तदीया महाराज्ञी केनचित् पुरुषेण सह पर्यङ्के सुखं शयानाऽस्ति। स्वकीये पर्यङ्के महिष्या सह सुप्तं कमपि पुरुषमालोक्य तयोर्वधाय यावत् खड्गहस्तो बभूव तावदेव सहसा तस्य दृष्टिः स्वर्णाक्षर-

मये अमुष्मिन् पद्ये पपात-'सहसा विदधीत न क्रियाम्' इति । तेन विचारि यदिमौ उत्थाप्य दण्डनीयौ इति, यदा जागृतौ तदा तावुभौ विलोक्य महदाश्चर्यसागरे मग्नः, यत् सा महाराज्ञी स च तस्य एकलः पुत्रः काचिद् धात्री चोरयित्वा क्वचिदनयत् तथा अद्यैव सायन्तने समये महिष्या कथमपि प्राप्य क्रोडीकृत आसीत् ।

तदनन्तरं राजा विष्णुवर्धनः तस्य कविवरस्य अन्वेषणाय सर्वं दूतान् प्रेषयामास, यल्लिखितेन पद्येन अद्य राज्ञः परिवाररक्षणं जातम् दूतैः कथञ्चित् स महाकविः अन्विष्य राजद्वारमानीतः, तदनु राज पुष्कलं धनराशिं तस्मै प्रदाय राजपण्डितेषु तं ससम्मानं नियुयोज । तत प्रभृतिः सः चिरकालं यावत् तस्य पण्डितसभामलङ्करोतिस्म । मह कावरयं नीतिशास्त्रमर्मज्ञः । एतस्य किरातार्जुनीये बहूनि नीतिवचनानि पदे पदे अनुस्यूतानि विराजन्ते । यथा राज्ञो विष्णुवर्धनस्यैकेन पद्ये परिवारसुरक्षा विहिता तथाऽस्य दैनिकजीवने ये विनियोगं करिष्यन्ति तेषामपि नूनं हितसम्पादनं भविष्यतीति सामाजिकानां विश्वासः ।

नीतिविशारदश्चाणक्योऽपि शीर्षकस्थं वाक्यांशं प्रकारान्तरेण पो पोषयन् निर्दिशति—

> कः कालः कानि मित्राणि को देशः कौ व्ययाऽऽगमौ ।
> कस्याऽहं का च मे शक्तिरिति चिन्त्यं मुहुर्मुहुः ॥

यदि कोऽपि मानवः स्वकीये जीवने कार्यक्षेत्रे वा श्लोकोक्तानि सप्तवाक्यानि संस्मृत्य व्यवहरेत् तर्हि तस्य जीवने कदाऽपि विप पदमाधातुं कथमपि न प्रभवेत् । मानवः यौवनधनादिमदगर्वितो य पूर्वापरविचारान् परित्यज्य कार्याणि प्रारिप्सति तदैव स महद् विपत्सा मज्जति अन्यथा सुखेन स्वं कालं यापयन् लोकैः प्रशस्यते । अतः कदा केनापि कथमपि कुत्रापि किमपि सहसा कार्यं न विधेयम् । अतएवो ग्रन्थकृता—

> सहसा साहसेनापि कार्यं कार्यं न केनचित् ।
> विचार्यं शक्तिसम्पन्नो यत्करोति सुखाय तत् ॥

# कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन

पद्यांशोऽयं भगवता श्रीकृष्णेन युद्धपराङ्मुखाय पार्थाय युद्धभूमौ समुपदिष्टः। एष उपदेशः व्यवहारपक्षेऽपि सार्वकालिकः सार्वजनीनश्चास्ति। यतो हि वयं गुरुजनानामाज्ञामनुसृत्य कार्यपथे तत्परा भवामः तदा सिद्ध्यसिद्ध्योश्चिन्ता तेषु एव भवति किन्तु सिद्धे कार्ये लाभं कर्त्ता एव प्राप्नोति, असिद्धेश्चिन्तायाः प्रश्न एव नोदेति। यो हि मानवः यादृक् कर्मणि संलग्नो भवति, अद्य श्वो वा स नूनं तस्य फलभाग्भवति भविता वा। शास्त्रेषु अनेकानि प्रमाणानि उपलभ्यन्ते कर्मफलप्राप्तेः। यथा— 'नहि कर्म महत् किञ्चित् फलं यस्य न भुज्यते', कर्मणः प्राधान्यं विवृण्वता श्रीकृष्णेन गीतायास्तृतीयेऽध्याये निगदितमस्ति—

> कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः।
> लोकसङ्ग्रहमेवाऽपि सम्पश्यन् कर्तुमर्हसि ॥

इत्यनेन सिद्ध्यति यत् कर्मणः शास्त्रीयो लौकिको वा समानाधिकारः। इतः परम् अष्टादशाऽध्याये यदा अर्जुनः सन्यासस्य विषये जिज्ञासते तत्र कथं वर्तितव्यमिति, तदुत्तरयति श्रीकृष्णो मतान्तराणि प्रदर्शयन्—

> काम्यानां कर्मणां न्यासं सन्यासं कवयो विदुः।
> सर्वकर्मफलत्यागं प्राहुस्त्यागं विचक्षणाः ॥
> त्याज्यं दोषवदित्येके कर्म प्राहुर्मनीषिणः।
> यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यमिति चापरे ॥

अनयोः पद्ययोः अयम्भावोऽस्ति यत्—पण्डितजनाः काम्यानां (स्त्री पुत्रधनादिप्रियवस्तूनां प्राप्तये तथा रोगादिसङ्कटापनोदार्थं क्रियमाणानां यज्ञदानतपसाम् उपासनादीनाञ्च) कर्मणां त्यागमेव सन्यासमामनन्ति। तदितरे विचारकुशलाः सर्वकर्मणां फलत्यागं (ईश्वरभक्तेः देवपूजनस्य मातृ-पितृ-गुरुजनादिसेवायाः, यज्ञ-दान-तपसां वर्णाश्रमानुरूपं वृत्तिद्वारा-गृहस्थाश्रमनिर्वाहस्य, भोजनाच्छादनादिकस्य च किं बहुना यावन्ति कर्तव्यानि कर्माणि सन्ति समेषां तेषां तथा ऐहलौकिकीनाम्पारलौकिकीनाञ्च कामनानां त्यागम् एव सर्वकर्मफलत्यागमिति) यथार्थं त्यागं जल्पन्ति। अपरे मनीषिणः तदेवं मन्वते सर्वाण्यपि कर्माणि दोषपूर्णानि सन्ति अतएव तानि त्यक्तव्यानि भवन्ति। केचन कथयन्ति यज्ञ-दान-

तपः कर्माणि कथञ्चन नैव त्याज्यानीति। इत्थं भगवता गीतायां परेषां मतं विविच्य स्वकीयमतं समुपस्थाप्य यद् विवेचितं तदत्र उपन्यस्यते—

निश्चयं शृणु मे तत्र त्यागे भरतसत्तम।
त्यागो हि पुरुषव्याघ्र! त्रिविधः सम्प्रकीर्तितः॥
यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्॥

उपर्युक्तमत-मतान्तरविवेचनानन्तरं निष्कर्षरूपेण भगवान् श्रीकृष्ण वक्ति—हे अर्जुन! कर्मणः त्यागस्य विषये त्वं मदीयं निश्चयं शृणु हे पुरुषश्रेष्ठ! सात्विक-राजस-तामसभेदैः कर्मणां त्रिविधः त्यागो भवति तेषु सङ्ख्यातीतेषु कर्मसु यज्ञदानतपोरूपकर्मणां त्यागो निषिद्धः। यतो हि यज्ञ-दान-तपांसि फलेच्छारहितम् अनासक्तं भगवदर्थकर्मपरायणं मनीषि सद्यः पावयन्ति। अत एतानि अपि कर्माणि सङ्गं फलानि च विहाय कर्तव्यानीति मदीयमुत्तमं मतम्। इतः परं भगवान् श्रीकृष्णः कर्म सिद्धिहेतुभूतानि साङ्ख्यमतसम्मतानि अधिष्ठानं, कर्ता, कारण विविधाश्चेष्टाः पञ्चमं दैवञ्च विवृणोति। तदनु के कर्मप्रेरकाः के कर्मसङ्ग्रहकरा भावास्सन्ति तान् अधस्तनेन पद्येन उपदिशति—

ज्ञानं ज्ञेयं परिज्ञाता त्रिविधा कर्मचोदना।
करणं कर्म कर्तेति त्रिविधः कर्मसङ्ग्रहः॥

हे अर्जुन! परिज्ञाता (परितः जानातीति), ज्ञानम् (येन ज्ञायते), ज्ञेयम् (ज्ञातुं योग्यम्) इत्थं त्रिविधा कर्मचोदना (प्रेरणा) भवति याभिर्मनुष्यः कर्मसु प्रेर्यते तथा कर्ता (करोतीति), करणम् (यैः साधकः कर्मकरणसाहाय्यं लभते), कर्म (क्रियते इति) इत्याकारकः त्रिविध कर्मसङ्ग्रहो भवति। इत्थं विविच्य श्रीकृष्णः वर्णधर्मानुसारं कर्म विभागमारभते, तद्यथा—

शमो दमस्तपः शौचं क्षान्तिरार्जवमेव च।
ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्यं ब्रह्मकर्म स्वभावजम्॥
शौर्यं तेजो धृतिर्दाक्ष्यं युद्धे चाप्यपलायनम्।
दानमीश्वरभावश्च क्षात्रं कर्म स्वभावजम्॥
कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यं वैश्यकर्म स्वभावजम्।
परिचर्यात्मकं कर्म शूद्रस्यापि स्वभावजम्॥

एवम्प्रकारेण चातुर्वर्ण्यस्य कर्मणो सङ्क्षेपेण वर्णनं विधाय निर्दिशति श्रीकृष्णः--'स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः,' इति आध्यात्मिकं कर्मणो रूपं विविच्य सामान्यदृष्ट्या कर्मणः किं स्वरूपमिति निरूप्यते--उद्यमः एव कर्म, यः उद्योगं करोति सः स्वास्थ्यं लभते, परोपकाराय यतते, किन्तु यो निष्कर्मशीलो भवति तं सर्वे अजगरादिशब्दैस्तिरस्कुर्वन्ति। स्वकर्मनिरतो मानवः कर्मयोगेन भाग्यमपि परिवर्तयितुं पारयति, किमत्र चित्रम्।

## सन्तोषः परमं सुखम्

सम्यक् तोषः सन्तोष इति कथ्यते। अप्राप्यवस्तुनो लोभ एव असन्तोषे बलीयान् हेतुः उत्तरोत्तरवर्धिनो तृष्णाऽपि असन्तोषमुद्भावयति। येन मानवजीवनं सर्वदा अशान्तं भवति तदेव अशान्तत्वम् असन्तोषमूलकपरमदुःखस्य कारणम् अतो दुःखनिवृत्तिमिच्छद्भिः पुम्भिः तृष्णालोभादिभावनाः परित्यज्य सन्तोषः समाश्रयणीयः, येन ऐहिकं सुखम् आत्मनः शान्तिः पारलौकिकं सुखम् मोक्षप्राप्तिश्च करतलामलकवद् भवति नीतिविद्भिः सन्तोषस्य विषये विभिन्नदृष्ट्या विचारसञ्चारः कृतो विलसति। तद्यथा—

सन्तोषस्त्रिषु कर्तव्यः स्वदारे भोजने धने।
त्रिषु चैव न कर्तव्योऽध्ययने जपदानयोः॥

पद्यस्यायमाशयोऽस्ति यज्जगति यावन्ति वस्तूनि सन्ति तेषु त्रिषु एव सन्तोषः करणीयः। तत्र क्रमेण १. स्वदारे--यादृशी स्वकीया पत्नी स्यात् तस्यामेव रतिः कर्तव्या। २. भोजने--स्वपौरुषोपार्जितं यादृग् भोजनं सुलभं स्यात् तदेव सन्तोषपूर्वकमश्नीयात् कः कीदृग् अश्नाति इत्याकारिका चिन्ता न समीचीना। ३. तथैव धनेऽपि--सन्ति महाराजानः राजानो कोट्यधीशाः लक्षाधीशाः च न कोऽपि स्वस्मिन् तुष्यति, इदमेवाऽसन्तोषस्य कारणम्। यथा--

इच्छति शती सहस्रं सहस्री कोटिमीहते कर्तुम्।
कोटियुतोऽपि नृपत्वं नृपोऽपि बत चक्रवर्तित्वम्॥
चक्रधरोऽपि सुरत्वं सुरोऽपि सुरराज्यमीहते कर्तुम्।
सुरराजोप्यूर्ध्वगतिं तथापि न निवर्तते तृष्णा॥

अहो! असन्तोषपरम्परा, यया ग्रहग्रस्त इव मानवः क्षणमपि न मनाक् सुखभाग् भवति। अतएव महामतिना चाणक्येन सन्तोषस्य सीमा स्थिरीकृता पूर्वोक्ते पद्ये, किन्तु न सर्वत्र सन्तोषः अपेक्षित इत्यपि सूचितम्, यथा अध्ययने स्वाध्यायादिकर्मसु, जपकर्मणि, दाने च सन्तोषो न कर्तव्यः। एतस्य समर्थनं श्रीकृष्णेनाऽपि गीतायां कृतमस्ति—'यज्ञदानतपः कर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत्'। यतो हि—'यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम्'। वास्तविकता इयमस्ति यत् यज्ञदानतपसां कर्ता आध्यात्मिकसन्तोषसम्पदा सर्वदा समृद्धो दरीदृश्यते। अतएव पूर्वाचार्यैः सोऽङ्गीकृतः अनया एव दृष्ट्या एतदधस्तनमपि पद्यं सार्थकतामावहति। यथा—

सन्तोषं परमास्थाय सुखार्थी संयतो भवेत्।
सन्तोषमूलं हि सुखं तन्मूलमितरद् धनम्॥

जितात्मा पुरुषः सुखं लभते, तच्च सन्तोषायत्तम्। सन्तोषमन्तरा धनप्राप्तिरपि न भवतीत्याशयः। एतदर्थमेव विदुषां कथनमस्ति यत्—

सन्तोषामृततृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम्।
कुतस्तद्धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम्॥

सत्यमेवैतद् धनलोभेन हिमालयमारभ्य आसमुद्रम्परिभ्रमद्भिः मृगमरीचिकाविभ्रान्तमानसैः क्व तत्सुखमुपलभ्यते यत्सन्तोषामृतेन तृप्तान्तरात्मनो भवति। अपरत्र चाणक्येन व्यक्तिविशेषसम्बन्धवशात् सन्तोषो द्विधा विभक्तः इति अक्षिलक्ष्योक्रियते। यथा—

असन्तुष्टा द्विजा नष्टाः सन्तुष्टाश्च महीभुजः।

अत्र उपर्युक्तस्य पद्यस्य इत्थं व्याख्यानमभिमतं यत् स्वदारे, भोजने, धने, सन्तोषो ब्राह्मणाय एवेति। अन्यथा कथं स एव महामनीषी स्वकीयामेवोक्तिं वितथीकुर्यात्। यदि नाम महीभुजः सन्तोषमाचरेयुः तर्हि कथं तेषां राज्यसीमाविस्तारः कथं वा ईतिग्रस्तेष्ववसरेषु प्रजापालनं सम्भवेत्। एतदर्थं महीभुजां सन्तोषो न श्रेयसे कल्पते। एतद् विपरीतं वचो महाभारते दृशोः पदमादधाति तत् कथं सङ्गच्छेत्, इति विवेकवतां सम्मुखे सोपपत्तिकं विवेच्यते—

सुपूरा वै कुनदिका सुपूरो मूषिकाञ्जलिः।
सुसन्तुष्टः कापुरुषः स्वल्पकेनैव तुष्यति॥

विपक्षसमाजे कान्दिशीकतां स्वीकुर्वन्तं स्वसुतं निरीक्ष्य समुपदिशन्ती विदुला कथयति—त्वं स्वल्पेनैव लोभेन स्वमहिमानं विस्मृत्य पराधीनतामाश्रित्य यज्जीवितुमिच्छसि तन्नास्ति श्रेयस्करम्। प्रसङ्गेऽस्मिन् 'सुसन्तुष्टः कापुरुषः' पद्यांशस्यास्य विनियोगः कृतोऽस्ति। अन्यत्र नाऽस्ति पूर्वोक्तस्य वाक्यस्यास्य महत्वम्। न स कापुरुषत्वं प्रतिपद्यते यः सन्तोषभाग् भवति।

सन्तोषः सकलकलिकलुषकषायितात्मनां कुशलश्चिकित्सकः, जीर्यतः स्वायत्तं धनम्, तृष्यतस्तृष्णानिवारकः परमो मन्त्रः, चिन्तासन्तानसमाऽऽवृतानामपरश्चिन्तामणिः, विषयविषवल्लोपरिवृतात्मनां च मुक्तिकारणम्। अतः सुखैषिभिः पुरुषरत्नैः परमात्मनि चेतः समाधाय स्वकीयवृत्तौ सन्तोषः कर्त्तव्यः, येन सार्वत्रिकी सुखप्राप्तिर्भविष्यति।

## सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति

इदं यथा जगति सुप्रसिद्धमस्ति यत् 'नहि सर्वः सर्वं जानाति' तथैव गुणानामपि स्थितिः वरीवर्ति। तद् यथा-कश्चन विद्यामधिगच्छति, तदपरः धनमाप्नोति, अन्यः सौन्दर्यं, तदितरः शूरत्वं लभते न सर्वे गुणाः एकत्र सन्तिष्ठन्ते। विषयेऽस्मिन् महर्षिणा चाणक्येन प्रतिपादितमस्ति—

भोज्यं भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वराङ्गना।
विभवो दानशक्तिश्च नाऽल्पस्य तपसः फलम्॥

अल्पतपोवतां पुरुषाणां न सर्वे गुणा दरीदृश्यन्ते। यत्र अधिकांशतया गुणानां समवाय उपलभ्यते तत्र नूनं भगवतः कृपा एव कारणरूपेण अनुमीयते। एतदतिरिक्तं धनमपि एतादृग् दृश्यते श्रूयते अनुभूयते च यस्य प्रभावेण निर्गुणः अपि पुमान् अकस्मादेव सर्वगुणसम्पन्नतां याति। अत्र विचारणीयमेतदस्ति यत् सत्सु बहुविधेषु धनेषु तत् किं नाम धनं यस्य समालम्बनेन पुरुषमावृणोति गुणसम्पत्।

प्रसिद्धधनानां नामानि—विद्याधनं, भूधनं, पशुधनं, रत्नधनं, पुत्रधनं, सन्तोषधनञ्च। किमेतेषु वर्तते तदतुल सामर्थ्यं यदाश्रयेण मानवः सर्वविधगुणसम्पदा परिवारितो दृश्येत? नैतेषु तत्सामर्थ्यं तदेकं काञ्चनं, सुवर्णं, हेम, हाटकं, रूप्यकं वा अस्ति, यत्र सर्वगुणसमवायो हठात् प्रविशति।

रूप्यकादिसम्पत्सम्पन्नस्य कीदृशी कल्पनातीता स्थितिर्विराजते एत-स्या वर्णनं सुभाषितमुखेन क्रियते—

धनवान् बलवाँल्लोके सर्वः सर्वत्र सर्वदा।
प्रभुत्वं धनमूलं हि राज्ञामप्युपजायते॥

अहो! महन्माहात्म्यं द्रविणस्य। यथा कथञ्चिद् धनपूर्णकोषाणां मानवानां सर्वविद्भिः विद्वद्भिरपि या वर्णनाऽनोताः स्तुतयः क्रियन्ते तत्र लोक एव साक्षी—

न सा विद्या न तच्छीलं न तद्दानं न सा कला।
अर्थार्थिभिर्न तच्छौर्यं धनिनां यन्न कीर्त्यते॥

इत्थं निर्गुणा अपि नराः गुणवतां समकक्षं यस्य माहात्म्यात् जनैः कीर्त्यन्ते तद्धनं समाश्रयतः पुंसः सर्वे दासतां यान्ति। धनलोभाभिभूताः कृशं स्वास्थ्यसम्पन्नं, काणं समदर्शिनं, खञ्जं सुपदं शान्तं वा, श्रवण-रहितं परस्य दोषश्रवणे निरुत्सुकं, व्रणिनम् अलङ्कारशतैरलङ्कृतम्, जराजीर्णम् अनुभविनं, दुश्चरित्रैःसमृद्धं विविधकलाकुशलमिति वर्णयन्ति, वर्णयन्तश्च तेभ्यः विपुलां धनराशिमनायासेनैव आत्मसात् कुर्वन्ति। इदमप्यवलोक्यते जगति यत् पुमांसो धनवत् स्त्रीषु अपि अनुरक्ता भवन्ति किन्तु ताः केवलं यूनामेव हृदयान्यावर्जयन्ति न च बालवृद्धनपुंसकानाम्, काञ्चनन्तु समेषां सचेतसां सर्वकालं प्राणवल्लभतां याति। अतः काञ्चन-तुलां ता अपि आरोढुं नैव समर्थाः। न केवलं सचेतना एव धनस्य महिमानं वर्णयन्ति अपितु अचेतना अपि। अत्रोदाहरणरूपेण वाद्यमानः दुन्दुभिः प्रस्तूयते—

दुन्दुभिस्तु सुतरामचेतनस्तन्मुखादपि धनं धनं धनम्।
इत्थमेव निनदः प्रवर्तते किम्पुनर्यदि जनः सचेतनः॥

अवलोकयन्तु तावत् सुखस्य मूलं धनम्। वयं संसारे रममाणाः यद् किमप्याचरामः, तत्र वधं वन्धनं किमपि वा स्यात्, यदि वयं धनेन परि-पूर्णाः स्मः तर्हि धनद्वारा एव सर्वं सेत्स्यति, न्यायालयेष्वपि प्रथमं धन-दण्डं तद्दानेऽसमर्थश्चेत् तदनु शारीरिकं दण्डं दीयते, किम्बहुना कदाचिद् धनव्ययेन प्राणसंरक्षणमपि कर्तुं पारयन्ति जनाः। देवब्राह्मणानां परितो-षोऽपि धनदानेन सम्पाद्यते। यथोक्तं दुर्गासप्तशत्याम्—'ददाति प्रतिगृह्णाति नान्यथैषा प्रसीदति'। यद् धनं प्राणरक्षायै कल्पते, यदभावे प्राणवन्तोऽपि

निष्प्राणा इवानुभूयन्ते, किं वा जीवन्तोऽपि मृतवद्भवन्ति येन च देवा अपि प्रसीदन्ति कथं न तदाश्रयणीयम् ।

सद्बुद्धियुक्तस्य पुरुषस्य तदेव धनं त्रिवर्गसाधकं भवति । यथा-धनेन दानं, दीनानां संरक्षणं, तीर्थयात्रा, देवदर्शनादिकञ्च भवति, यैः कृत्यैर्धर्मार्जनं सरलतया सम्पाद्यते । कामप्राप्तिरपि धनेन एव दृश्यते, यावन्तः संस्पर्शजा भोगा भुवि सम्भाव्यन्ते तेषु धनमेव प्रधानरूपेण साहाय्यं वितनोति । परम्परया धर्मप्रवणस्य पुंसः मोक्षप्राप्तिरपि सम्भवति भगवत्कृपया । धनमन्तरा कौटुम्बिकं जीवनमपि नरकायते, तत उत्तमं भवति व्याघ्रगजेन्द्रसेवितं वनं, द्रुमालयं, पत्रफलाम्बुभोजनं, तृणेषु शयनं, वल्कलवसनम् एतानि सेवमानोऽपि पुरुषः सुखेन कालं गमयति किन्तु धनहीनस्य तस्य बन्धुमध्ये निरादरः सञ्जायते । अतः सांसारिकयात्रायां सुखमयं कालं यापयितुकामेन पुंसा धनार्जने प्रवृत्तिर्विधेया । प्रसङ्गेऽस्मिन् धनवरिवस्यापरैः कैश्चिद् पद्यपुष्पैरुपसंह्रियतेऽयं शीर्षकः 'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्तीति' ।

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः स पण्डितः स श्रुतवान् गुणज्ञः ।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति ॥

अपरमपि—

धनैर्निष्कुलीनाः कुलीना भवन्ति
धनैरापदं मानवा निस्तरन्ति ।
धनेभ्यः परो बान्धवो नास्ति लोके
धनान्यर्जयध्वं धनान्यर्जयध्वम् ॥

अन्यदपि—

जातिर्यातु रसातलं गुणगणस्तत्राप्यधो गच्छता-
च्छीलं शैलतटात्पतत्वभिजनः सन्दह्यतां वह्निना ।
शौर्ये वैरिणि वज्रमाशु निपतत्वर्थोऽस्तु नः केवलं
येनैकेन विना गुणास्तृणलवप्रायाः समस्ता इमे ॥

# संस्कृतभाषाया महत्वम्, राष्ट्रभाषा-संस्कृतम्

कस्या अपि भाषाया महत्त्वं तद्भाषाभाषिणां सङ्ख्यायामाश्रितं भवति अथवा कियत्सम्पन्नं विपन्नं वा तस्य साहित्यमस्ति इत्यत्राऽपि च स्थिति लभते। अत्रेदमवधार्यं भवति यदिदं साम्प्रतिकं भारतवर्षं तदेव पुरातन आर्यावर्तः। अत्र निवासिनः आर्याः, येषाम् आद्या संस्कृतिः वैदिकीसंस्कृतिः आसीत्, यतो हि तदानीन्तनाः जनाः संस्कृतभाषाभाषिणः आसन्। तेषु अपि ब्राह्मणक्षत्रियविशां भाषा संस्कृतभाषा एव आसीत्। अधीतविद्याः स्त्रियः अपि संस्कृतज्ञा भवन्ति स्म, अकुलीनाः पुरुषा स्त्रियश्च असंस्कृतज्ञा, मूर्खा अत एव तेषां भाषा अपभ्रंशबहुला प्राकृतेति अद्यावधि नाटकेषु दृश्यते।

भगवतो रामचन्द्रस्य प्रेयान् सेवको हनूमान् यदा दशमाषकपरिमितां कनकमयीं मुखमुद्रितां मुद्रामादाय सीतायै ददौ तदा स विचारयति स्म यत्सीतायै सन्देशः कां भाषामाश्रित्य दद्यामिति। तद्यथा वाल्मीकीये रामायणे—

यदि वाचं वदिष्यामि द्विजातिरिव संस्कृताम्।
रावणं मन्यमाना मां सीता भीता भविष्यति॥

अनेन सुतरां सिद्ध्यति यद् वेदवेगाङ्गपारगः त्रैलोक्यविद्रावणो रावणः संस्कृतज्ञः संस्कृतवाङ्मुखरोऽपि आसीत्। किमाश्चर्यमतः परं यद् मनुष्येतरा अपि संस्कृतभाषाविद आसन् पुराकाले। किं प्राचीनकालि कया चर्चया, साम्प्रतमपि जावा-सुमात्रा प्रभृतिद्वीपेषु सन्ति सङ्ख्यातीताः संस्कृतज्ञाः सङ्ख्यावन्तः। अद्य अस्माकं सर्वकारः अन्यभाषापेक्षया संस्कृताय यतमानो दृश्यते मन्थरगत्या। विषयेऽस्मिन् न सर्वथा सर्वकारो दोषाय कल्पते, यतो हि संस्कृतभाषोपजीविनो वैदिकाः पौराणिकाः, तान्त्रिकाः, मान्त्रिकाः ब्राह्मणाः, किं बहुना ये ये च संस्कृत भाषां स्वां मातरमिव मत्वा तत्र श्रद्धावद्धावधानाः सन्ति ते सर्वेऽपि सम्भूय विश्वस्मिन् तस्य प्रचारम्, प्रसारम्, अध्ययनम्, अध्यापनम्, अनुशीलनञ्च कुर्युः तद्विदान् प्रोत्साहयेयुः, समये समये सर्वकारं निवेदयेयुः च तर्हि नूनमेतस्याः सम्भवेद् विकासः। यदा वयं संस्कृतभाषाया महत्त्वविषये विवेचयामः तदा तु निर्भ्रान्तं मतमेतदुदेति यत् संस्कृतभाषाया महन्महत्त्व

वरीवर्ति, सा चरीकर्ति अभारतीयानपि भारतीयमतावलम्बिनः, जरीहर्ति विपुलमज्ञानध्वान्तं, नरीनर्ति साम्प्रतमपि सर्वदेशजुषां विदुषां रसनारङ्ग-भूमौ, दरीदर्ति समस्तशब्दवैकल्यजातं न्यूनत्वम्। यावन्तो हि विषयाः सन्ति सम्भविष्यन्ति च तावन्तः सर्वेऽपि गद्यपद्यरूपे संस्कृतसाहित्ये चिराद् विराजन्ते। तेषां विपुलः सङ्ग्रहो यदि कुत्रापि सुलभोऽस्ति सः संस्कृत एव। तदत्र दिङ्मात्रमुदाह्रियते—चत्वारो वेदाः संस्कृतमयाः तेषां भेदोपभेदाः शाखाप्रभृतिरूपैः परिकल्पिता सुशोभन्ते। तद्वाङ्मयम्—शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दः ज्यौतिषम्। इत्येतानि वेदानां षडङ्गरूपेण ख्यातानि। एतेषां स्थितिः गीर्वाणभाषायामेव परिलक्ष्यते। तदन्तरं स्मृतीनां रचनापि संस्कृतवाङ्मये एव दृश्यते, इतः परं पुराणानां सङ्ख्या अष्टादशपरिमिता तथैवोपपुराणानामपि गणना विद्यते। तदनु काव्यनाटकचम्पूप्रभृतीनां गणनां कर्तुं कः पारयति। महान्ति सूचीपत्राणि तत् तद् ग्रन्थालयैः प्रतिवर्षं प्रकाश्यन्ते पुनरपि न तत्साहित्यं शेषतां याति, इत्यहो! संस्कृतभाषाया भण्डारस्य निःसीमता।

एतादृग्विपुलं भाषाभण्डारं यस्या वरीवर्ति तस्या विषये विवेचनं सति सूर्ये प्रकाशः कीदृशो भवति इतीव चर्चावद् हास्यास्पदं भवति। विचित्रोऽयं लोकः यः परोत्कर्षं न सहते। एवमेव कैश्चन परोत्कर्षासोढैः प्रचारितमेतल्लोके यद् विदेशीया विद्वांस एनां संस्कृतभाषां मृतामिति कथयन्ति। किन्तु तान् कः पृच्छेत्? कश्च-उत्तरयेत्? यत् केन कम्प्रति कथितं केन वा श्रुतं कुत्र लिखितं वर्तते, तच्च केनावलोकितम्। सर्वत्र अन्धानुकरणम्प्रचलति, एतस्य विषये श्रीमता विष्णुशर्मणा पञ्चतन्त्रे लिखितमस्ति—

गतानुगतिको लोको न लोकः पारमार्थिकः।
बालुकालिङ्गमात्रेण गतं मे ताम्रभाजनम्॥

इत्थमेव ये औचित्यविचारविहीना भवन्ति त एव परपादैः प्रचलन्ति, परदृष्ट्याऽवलोकयन्ति, स्वविचराशून्यतया इत्थमनर्थमाचरन्ति। एतादृशी एव चर्चा इयमप्यस्ति, यत् 'संस्कृतभाषामृतेति' वास्तविकता इयमस्ति, यत् संस्कृतभाषा नास्ति कोऽपि प्राणी यः मृत्युं यायात्। सा संस्कृतभाषा तु सरस्वत्या मूर्तिमत्तनुः, यदर्थं वाङ्मयी सरस्वत्याः समुपासका

वसुन्धरारत्नायमानाः जीविष्यन्ति न तावद् अस्य मृत्योः शङ्का । गुरूणामाशीर्वादः, गङ्गा, हिमालयः, पृथिवी, रामकथा च यावल्लोके स्थास्यति तावदेव संस्कृतभाषा किंवा राष्ट्रभाषासंस्कृतं स्वकीयं महन्माहात्म्यं प्रकटीकुर्वत् स्थास्यति भूतले। अतोऽस्माभिः एषा समृद्धा सर्वविधज्ञानविज्ञानसम्भारवती, चतुर्वर्गप्रदानसक्षमा संस्कृतभाषा आत्मश्रेयसे लोकस्थेयसे च सर्वदा समाश्रयणीयेति ।

## शिक्षाया उद्देश्यः, शिक्षाया महत्त्वम्

विस्तृतेऽस्मिन् संसारे मूलतो द्विविधा जनाः दृश्यन्ते । तेषु एके पठिताः अपरे अपठिताः । अपठितेष्वपि द्विविधाः, एके संस्कारार्हाः तदितरे प्रकृतिजडाः । प्रकृतिजडानां वास्तविकस्वरूपवर्णनं महामतिना भर्तृहरिणा नीतिशतके एवं कृतं विलसति—

प्रसह्य मणिमुद्धरेन् मकरवक्त्रदंष्ट्रान्तरात्
समुद्रमपि सन्तरेत् प्रचलदूर्मिमालाकुलम् ।
भुजङ्गमपि कोपितं शिरसि पुष्पवद् धारयेन्-
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥

तदेव प्रकारान्तरेण—

लभेत सिकतासु तैलमपि यत्नतः पीडयन्
पिबेच्च मृगतृष्णिकासु सलिलं पिपासार्दितः ।
कदाचिदपि पर्यटञ्छशविषाणमासादयेन्
न तु प्रतिनिविष्टमूर्खजनचित्तमाराधयेत् ॥

'दुर्जनं प्रथमं वन्दे' इति न्यायात् भर्तृहरिणोदितपद्यद्वयेन प्रतिनिविष्टमूर्खाणां स्वरूपमुपन्यस्तम् । एतान् विहाय शेषेषु पुरुषेषु एवं प्रतिपदं फलति शिक्षाया उद्देश्यः । एतादृशा एव शिक्षामधीत्य एतस्या महत्वं विस्तारयन्ति दिगन्तेषु । अत्रेदं विचारणीयं भवति यत् के के शिक्षाया उद्देश्यभूता विषयाः यैः तत्र लोकोऽनुरज्यते । तदुच्यते—

धर्मार्थकाममोक्षेषु यस्यैकोऽपि न विद्यते ।
अजागलस्तनस्यैव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥

मूलतश्चतुर्वर्गप्राप्तिरेव शिक्षाया उद्देश्यः। चतुर्वर्गेऽपि मुक्तेरेव प्राधान्यम्, सा मुक्तिः विद्यया सुलभा भवति। यथा—'ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः'। किं वा 'सा विद्या या विमुक्तये' अथवा 'विद्ययाऽमृतमश्नुते' इत्यादीनि प्रमाणभूतानि शास्त्रवचनानि सन्ति शास्त्रान्तरेषु सुसङ्गृहीतानि। कथं शिक्षया मुक्तिः सुलभेति पृच्छ्यते चेत् तदपि समाधीयते—

विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद् धनमाप्नोति धनाद्धर्मं ततः सुखम्॥

पद्येऽस्मिन् धनस्य धर्मस्य तु स्पष्टं वर्णनं कृतमेव किन्तु पात्रतायाः यदुल्लेखो विहितो वर्तते सा एव सर्वकामानामवाप्तिः। इत्थं पुरुषार्थत्रयं समुपवर्ण्य सूक्तिकृता पर्यन्ते सुखम् इत्यस्य चर्चा विहिता। तदिदं किमाकारकं सुखम्? पानगोष्ठीषु पायं पायं यदपायं गमयति तद्? आहोस्वित् लोकोत्तरानन्दजनकं निर्वाणरूपं वा? नूनं विद्यया यत् सुखं स्यात् तदनिर्वचनीयं मोक्षाभिधमेव। पानगोष्ठ्यादिषु भग्नदार्विव निष्क्रियता येन हठादायाति तदपि यदि कोऽपि विचारवान् सुखमिति कथयेत् चेत् तर्हि किं नाम अपरं दुःखम्।

व्यावहारिकदृष्ट्यापि शिक्षाया उद्देश्यो वरीवर्ति मानवमात्रस्य चरित्रनिर्माणद्वारा तस्य सत्पथानयनम्। चरित्रनिर्माणद्वारा पुरुषेषु आदर्शभावनाया उद्बोधनम्। शिक्षा एव प्रत्येकं मानवं सच्चरित्रं निर्मातुं प्रभवति, तदनु तत्र व्यवहारकरणस्यापि निर्देशः तया प्राप्यते। सभ्यता, धार्मिकता, जितेन्द्रियतादिसद्गुणगणानां प्राप्तिर्यया भवेत्, यया च अविद्यादिदुर्गुणानां विनाशःस्यात् सैव शिक्षा, अयमेव एतस्या उद्देश्यः, इदमेव महत्वञ्च। या सर्वविधहृदयगतसुषुप्तभावजातान् स्वकीयज्ञानरश्मिजालैः सम्यगुद्बोधयति सा शिक्षेति पदेन व्यपदिश्यते। अद्य विदेशेषु या सम्पन्नता दृश्यते सा सर्वा ज्ञानविज्ञानविलासेनैव विजृम्भिता विलसति। केचन निष्ठया विद्याक्षेत्रेषु कृतभूरिपरिश्रमाः सर्वतः दृश्यन्ते श्रूयन्ते च तत्र कतिपये शिक्षाया दुरुपयोगं कुर्वाणा अपि सन्ति तेषां बुद्धिविलासनिर्गतानि परमाणुनामधेयानि अस्त्राणि जगद्विध्वंसकराणि सन्ति। एतादृशो दुरुपयोगपरम्परा न नवीना अपितु पुरातनी। यथा—

विद्या विवादाय धनं मदाय शक्तिः परेषां परिपीडनाय।
खलस्य साधोर्विपरीतमेतद् दानाय भोगाय च रक्षणाय॥

एतत्सर्वम् मनुष्यायत्तम्। परन्तु एतद् वक्तु न युज्यते यत् शिक्षा हितकारिणी अहितकारिणी वा भवति। शिक्षा सर्वदैव हिताय एव कल्पते जनानाम्। यस्याः शिक्षायाः यादृशा गृहीतारः प्रयोक्तारः वा स्युः तेषां यादृशी प्रकृतिः भविष्यति, ते स्वकीयस्वभावानुसारं तथा व्यवहरिष्यन्त्येव नात्र सन्देहावसरः। शिक्षायाः एव अर्थान्तरं विद्या। अतः विद्यया समं न किमपि जगति विद्यते। तस्याः सर्वेऽपि उद्देश्याः पुरुषमात्रस्य हिताय कल्पन्ते, तत्र मानव एव दोषी यदि सः तथा व्यभिचरति।

यत् कार्यं शिक्षया संसारे सम्पाद्यते न तत् केनापि अन्येन साधनेन, अतः शिक्षाया अभ्यसनं सर्वैः कर्तव्यम्। यदा सत्कर्तव्यबुद्धिः जागृता भवति तदा तस्याः अनुसरणेन अनुसर्तुः पदे पदे लाभोदयस्तु भवत्येव किन्तु तस्य अनुयायिनः अपि जागृता भवन्ति। एवं क्रमेण शनैः शनैः ग्रामस्य नगरस्य जनपदस्य राष्ट्रस्य किमधिकं समस्तमानवानां सार्वत्रिकः सार्वकालिककश्च अभ्युदयः सम्भवति। सङ्क्षेपेणात्र निर्दिश्यते निबन्धकृता—

शिक्षा शिक्षयतीह सत्यवचनं सम्माननं श्रीजुषां
पूज्यानाम्पुरतो विनीतचरितं स्निग्धेषु सद्भावनाम्।
धर्मं कर्म च लोकवेदविदितं चातुर्यमव्याहतं
स्तुत्यञ्च व्यवहारजातमखिलं धन्या स्मृता सा भुवि॥



## अनुशासनम्, छात्राणां कर्त्तव्यानि

चक्रारपङ्क्तिरिव प्रचलति ह्रासविकासयोः क्रमः। पुरुषेषु अयं क्रमः बालक-युवा-वृद्धेतिक्रमेण परिणतिं गच्छति। तदित्थम्—अद्य ये छात्रत्वेन अस्माकं पुरः उद्यानकोरकायमाणा विकासोन्मुखा दृश्यन्ते, त एव भाविनो जगतः मान्याः कर्णधारा भविष्यन्ति, अतस्तेषां स्कन्धेषु महान् भारराशिः निक्षिप्तो भविता। कथन्ते एतादृग् गुरुतरभारवहने समर्था भवेयुः विषयेऽस्मिन् किमपि विवेचनीयमस्ति प्रस्तुतप्रसङ्गे।

छात्रावस्थायां ब्रह्मचर्यादिनियमानभ्यसन्तः ते यथाविधि अध्ययनं मननं स्वाध्यायञ्च कुर्युः। गुरुजनानाम् उपदेशान् पालयन्तः तेषां चरणेषु निवसन्तः ये स्वकीयम् अध्ययनकालिकं जीवनं गमयन्ति, त एव स्वतन्त्रस्य

देशस्य महतीं धुरं निर्वोढुं समर्था भवन्ति । लोकः अपि तेषु विश्वसिति, यदेते सच्चरित्रपुष्टकायाः गुरूपदेशेषु विश्वासवन्तः, पवित्रान्तःकरणाः नूनं देशस्य भागधेयानि अभिवर्धयिष्यन्ति । अद्य गान्धिप्रभृतिमहापुरुषवर्य्याणां महता महसा अदम्येनोत्साहेन परिश्रमेण च अस्माकं भारतवर्षं पराधीनतापाशान्मुक्तिमधिगम्य स्वतन्त्रतां गतम् । तदानीं ये छात्रा आसन्, त एव अद्य क्रमशः देशस्य नेतारः सन्ति । साम्प्रतिकाः ये स्वकर्मपरायणाः छात्राः सन्ति ते भाविनि काले देशस्याऽस्य स्वातन्त्र्यसंरक्षणं विधास्यन्ति इति समेषां मनीषा ।

अध्ययनकाले यथा सर्वविधाः छात्राः गुरूणां चरणेषु नीचोच्चभावनाः परित्यज्य उपविशन्ति प्रेम्णा भ्रातृभावमापन्ना व्यवहरन्ति तथैव सामाजिकजीवनेऽपि व्यवहर्तव्यमिति न विस्मर्तव्यम् । अध्ययनविषयेषु अपि तेषामेव विषयाणाम् अध्ययनं समीचीनं भवति ये प्रायोगिकाः स्युः, एतादृक्षु विषयेषु कृषिः, कुटीरोद्योगाः, यन्त्रादिनिर्माणप्रकाराः इत्यादिषु विविधप्रकारेषु सत्सु यः कोऽपि विषयः अभीष्टः स्यात् तत्र साभिनिवेशं प्रयतनीयम् । यथा पश्चादपि जीवनक्षेत्रे तस्य बृहदाकारः प्रयोगः स्वस्मै अर्थंकरः स्यात् समेषां हिताय च भवेत् । छात्रा एव राष्ट्रस्याधारभित्तयः इति कथ्यन्ते । 'शतायुर्वै पुरुषः' इति प्रमाणेन पुरुषः शतं वर्षाणि जीवति । तज्जीवनं चतुर्षु भागेषु विभक्तम् । तेषु प्रथमो भागः ब्रह्मचर्यमयः, द्वितीयो गृहस्थाश्रमः, तृतीयो वानप्रस्थः, चतुर्थः च सन्यासाश्रमः । एषु प्रथमो ब्रह्मचर्य्यमयः कालः विद्याध्ययने विनियोजनीयः, इदमेव मुख्यं कर्त्तव्यं छात्राणाम् । 'कार्यकालं न हापयेत्' यद्यपि इदं वचः सर्वैः समानरूपेण समादरणीयम्, तथाऽपि छात्रैरत्र विशेषेण अवधेयम् । यतो हि—

प्रथमे नार्जिता विद्या द्वितीये नार्जितं धनम् ।
तृतीये न तपस्तप्तं चतुर्थे किं करिष्यति ॥

एतेन विदितो भवति यत् प्रत्येकस्मिन् विभागे अनिवार्यकर्माणि वर्णितानि सन्ति तेषामाचरणम् अत्यन्तमावश्यकम् । इत्थं महत्वपूर्णं छात्रजीवनं यो व्यर्थं यापयति स स्वकीयं समस्तं जीवनं कण्टकाकीर्णं करोति । अध्ययनकाले ये छात्राः उपदेशपूर्णानि गुरूणां कठोरवाक्यानि श्रुत्वापि धैर्यमालम्ब्य अध्ययनं कुर्वन्ति ते पश्चात् सुखेन कालं गमयन्ति । यथा—

गीर्भिर्गुरूणां परुषाक्षराभिः सन्तर्जिता यान्ति नरा महत्वम् ।
अलब्धशाणोत्कषणा नृपाणां न जातु मौलौ मणयो वहन्ति ॥

अर्थाद् राज्ञां मुकुटेषु ये मणयः खचिताः दृश्यन्ते ते शाणोत्कषणानन्तरम् एव तद्योग्यतां बिभ्रति, तथैव गुरूणां परुषाक्षरैः धर्षिताश्छात्राः महत्सु पदेषु प्रतिष्ठिताः शोभन्ते । सङ्क्षेपेण छात्राणां कर्तव्यसूचीयं निर्दिश्यते—सत्याहिंसास्तेयभावना ब्रह्मचर्यापरिग्रह-जितेन्द्रियत्व-शौच-सन्तोष-तपः-स्वाध्याय-भगवदुपासनादय इति । ब्रह्मचर्य्यस्यापि महिमानं वर्णयन्ती श्रुतिः कथयति—'ब्रह्मचर्य्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत' । अर्थात् मृत्युरपि येन निर्जितो भवति तद् ब्रह्मचर्य्यमिति प्राक्तनाः ।

साम्प्रतं छात्रजीवनं सर्वथा विपरीतमिव संवृत्तम् । तेषाम्प्रवृत्तिः सर्वथा अध्ययनाद् दूरीभूय अन्यत्र रमते । गुरोः उपदेशमन्तरा सम्यङ् मार्गदर्शनं कथमपि केनापि प्रकारेण नैव शक्यते, इति व्यवहारतः शास्त्रतोऽपि सिद्धयति किन्तु इदानीं गुरुषु छात्राः न तथा श्रद्धावद्धादराः दृश्यन्ते यथा आवश्यकता भवति । तेषामनादरेण विद्यायाः उत्तरोत्तरो ह्रासः, विद्यायाः ह्रासेन विद्यार्थिनां ह्रासः, तेषां ह्रासेन तस्य देशस्य ह्रासः यस्य ते कर्णधाराः सम्भविष्यन्ति भाविनि काले ।

यथा देशस्य आधारशिलारूपाश्छात्राः भवन्ति तथैव छात्राणां तात्कालिकजीवनस्य आधारशिलारूपा गुरवः विराजन्ते । ते यथा धीमतः, शूरान्, वीरान्, दानशीलान्, कर्मठान्, देशभक्तान्, दयालून्, शासकान्, वैज्ञानिकान् वा तान् रचयिष्यन्ति तथा ते भूत्वा भाविनि युगे कार्यं समाचरिष्यन्ति । छात्राणामपेक्षया गुरुजनाः उपदेशकर्मसु उदासीनाः भवेयुश्चेद् हन्त ! तर्हि को नाम अपरः देशस्य समुद्धर्ता स्यात् । अतः पुनरपि छात्रैः तथा प्रयतितव्यं यथा ते पूर्ववद् गुरुषु श्रद्धालवो भवेयुः तेषां ज्ञानजातमाकण्ठं निपीय बाह्येन आभ्यन्तरिकेण च शरीरेण सम्पुष्टास्ते सर्वत्र सम्माननां लभेयुः । अतएवोक्तं ग्रन्थकृता—

अनुशासनसद्धर्म-परायणनराः सदा ।
आत्मानं स्वकुलं देशं पोषयन्ति न संशयः ॥

# ब्रह्मचर्य्यम्



ब्रह्मणो = वेदस्य चरणम्-आचरणं ब्रह्मचर्य्यमिति कथ्यते। अर्थात् वेदोक्तनियमाननुसृत्य यस्मिन् अवस्थाविशेषे मानवश्चरति सा अवस्था ब्रह्मचर्य्यशब्देन व्यपदिश्यते। श्रुतिषु स्मृतिषु च अपि मानवस्य शत-वर्षात्मकं जीवनं चतुर्धा विभक्तं दृश्यते। तच्च–ब्रह्मचर्य्यं, गृहस्थाश्रमः, वानप्रस्थः, संन्यासः च इति। मनुष्योपरि यावद् दायित्वं वर्तते निखिलस्य तस्य निर्वाहः एषु चतुर्षु आश्रमेषु सम्यक् चरन् एव मनुष्यः कर्तुं समर्थो भवति नान्यथा। तद्यथा—'शतायुर्वै पुरुषः' इति वैदिक-वचनानुसारं प्रत्येकम् आश्रमः पञ्चविंशतिवर्षात्मको गणनया सिद्ध्यति। तेषु प्रथमः आश्रमः ब्रह्मचर्य्याभिधः, अयमेव जीवनस्य मूलाधारत्वेन बोभवीति। अमुना एव गृहस्थाश्रमः अपि सुखाय कल्पते, वानप्रस्थाय च रुचिरुदेति, सन्यासाश्रमस्यापि सम्यङ्निर्वाहो भवति। अतः सर्वाधार-रूपस्य ब्रह्मचर्य्यस्योपासना उदीयमानैश्छात्रैः यथाविधि विधेया।

अथैतस्य कदा प्रभृति आरम्भ इति जिज्ञासायां समाधीयते शास्त्र-मुखेन। जन्मनः प्रभृति आपञ्चमवर्षं सः लालनयोग्यो भवति तदनु कृतचूडाकरणादिक्रियाकलापस्य बालकस्य गुरुः उपनयनं करोति ततः प्रभृति सः गुरोः समीपे आपञ्चविंशतिवर्षं वेदादीनामध्ययनं कर्तुं सादरं निवसति। एतस्मिन्, विंशतिवर्षात्मके काले सः विविधान् नियमान् सेवते। यथा—प्रातः चतुर्वादने निद्रां विहाय शौचादिकर्माणि समाप्य स्नाति, सन्ध्यावन्दनं व्यायामादिकञ्च करोति, ततः गुरोः समीपमुपसृत्य श्रद्धया प्रणम्य तेषामनुज्ञया उपविश्य दैनिकं पाठं सहपाठिभिः सह विनीत-भावेन शृणोति तत्पश्चाद् भोजनादिकं विधाय अधीतविषयानभ्यसति। ततः सायं सन्ध्यामुपास्य स्वाध्यायं कृत्वा रात्रौ गुरोराज्ञाम्प्राप्य स्वपिति। एवं प्रतिदिनं कुर्वन् ब्रह्मतेजसा समेधमानः सः साङ्गान् वेदानधीत्य गुरोरनुज्ञामुपलभ्य स्वकीयं गृहं प्रत्यावर्तयति। पञ्चवर्षानन्तरम् तद-वधिगुरोः सविधे उषित्वा तेन यद् यद् आचरितं तत्सर्वं ब्रह्मचर्य्यपदेन व्यपदिश्यते।

इयं पुरातनी परिपाटी यदा ब्राह्मणाः, राजानः, क्षत्रियाः, वैश्याश्च स्वकीयतनूजान् आचार्याय समर्प्य तेषां भोजनादिकस्य आश्रमोचितां व्यवस्थां कुर्वन्ति स्म। किन्तु साम्प्रतं स पुरातनः समयः, अद्य तु सर्वमेव

नवीनं दृश्यते। परिवर्तनमिदं वैदेशिक-शिक्षा-दीक्षायाः प्रभाव इति नास्ति सन्देहलेशः। विचारणीयमिदमस्ति यत् सम्प्रति ब्रह्मचर्य्यस्य कीदृक् स्वरूपं भविता, कथञ्च तस्य परिपालनं सम्भवेद्, तस्य आवश्यकता अस्ति न वा, प्रश्नसङ्घोऽयं बलादुदेति। प्रसङ्गेऽस्मिन् निरूपितं यद् ब्रह्मचर्य्यम् अस्माक जीवने तथाविधमस्ति, यथा प्रासादस्य निर्माणात् प्राक् तस्य आधारशिलारोपणमतीवावश्यकं भवति तद् वद् एव। उक्तमपि—

प्रासादस्य विनिर्माणे मूलभित्तिरपेक्ष्यते।
तथैव जीवनस्यादौ ब्रह्मचर्य्यमपेक्षते॥

अतो निर्विवादमिदं सिद्धयति, ब्रह्मचर्य्यस्य महत्वं यथा प्राग् आसीत् तथैव अद्यापि वर्वर्ति किन्तु साम्प्रतं विद्यालयाः ग्रामेषु, नगरेषु, जनपदेषु च तत्र-तत्र स्थिताः सन्ति यत्र तेषां परितः चलच्चित्रालयाः, नाट्यशालाः, मिष्टान्नवीथयः, आपणानि, मदिरागृहाणि च सन्ति, यैः सच्चरित्रा अपि छात्राः अनायासेन एव पथभ्रष्टाः भवन्ति। ब्रह्मचारी जितेन्द्रियः स्यादिति सर्वप्रथममावश्यकम्। विशेषतः तस्य कृते 'मातृवत् परदारेषु' इति नियमं वर्तते, एतस्य सर्वथा विपरीतमिदमवलोक्यते, यत् समाज एव तस्य कृते विरुद्धां स्थितिमुत्पादयति। ब्रह्मचर्य्यमये जीवने इन्द्रियवशीकरणं विद्याध्ययनञ्च मूलतः कार्यद्वयस्यैव भारो ब्रह्मचारिणे प्रदीयते। जितेन्द्रियतया वीर्यस्य रक्षा भवति, वीर्यमेव जीवनस्य सारभूतं वस्तु, यस्येदृग्वर्णनं शास्त्रकारैरकारि—

'मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्'।

विद्याध्ययनकर्तृविषये नीतिकाराणामियं मान्यता वर्तते—

अहेरिव गणाद्भीतो मिष्टान्नाच्च विषादिव।
राक्षसीभ्य इव स्त्रीभ्यः स विद्यामधिगच्छति॥

एतानि वाक्यानि अद्यापि विचारपथमवतारयद्भिर्विद्वद्भिरक्षरशः स्वीक्रियन्ते किन्तु मूकस्य लड्डुकास्वादवत् केऽपि अद्य तथ्यमपि विषयं कथयितुं नोत्सहन्ते। हा हन्त! एतादृश्यां स्थितौ कथं ब्रह्मचर्य्यस्य रक्षा प्रभवेत्। एतस्यैव अभावात् अद्य यूनां या शारीरिकी स्थितिर्जाता सा सर्वथा शोचनीयास्ति। यदि वयं सर्वेषामुपकारक्षमा न स्मः, तर्हि स्वकीयानेव बालकान् तत्र प्रेरयामः येन तेषां जीवनं सुखकरं स्यात्।

•

# योगः कर्मसु कौशलम्

महर्षिप्रवरेण पतञ्जलिना निर्दिष्टं यत् 'योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः' भगवता श्रीकृष्णेनापि गीतायां तस्य विषयस्य चर्चा एवं प्रकारेण विहिताऽस्ति—'योगः कर्मसु कौशलम्। इति, अवितथमिदमुभयोर्जल्पितम्। तदेव विवृणोमि। यदि नाम वयं किमपि कार्यं परिश्रमसाध्यमनायाससाध्यं वा कर्तुं विचारयामः, तत्र मनसः एकाग्रता सुतरामपेक्षते। सर्वेषां प्राणिनां मनसः का स्थितिर्भवति एतस्य विषयेऽपि भगवद्गीतायाः सूक्तिः पाठकानाम्पुरः प्रस्तूयते—

चञ्चलं हि मनः कृष्ण प्रमाथि बलवद् दृढम्।
तस्याऽहं निग्रहं मन्ये वायोरिव सुदुष्करम्॥

अर्जुनः श्रीकृष्णम्प्रति पृच्छति, भगवन्! एतन्मनः प्रमाथि मनुष्यस्य विचारजातं मथ्नाति तथा कामं दृढमपि वर्तते। मानवः यद् विचारयति तत्प्रमथ्य अन्यदेव कर्तुं प्रवर्तयति मनः, अत एतस्य निग्रहः, वायोर्निग्रहापेक्षयापि कठिनतरम् मन्ये। इदं तथ्यं, यावन्मानवस्य मनसः स्थितिः एकाग्रा न भवति तदवधि स न किमपि कार्यं कर्तुं प्रवृत्तो भवति न वा तत्र सिद्धिरेव जायते। उपर्युक्तस्य पार्थप्रश्नस्योत्तरं ददन् श्रीकृष्णः कथयति—

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते॥
असंयतात्मना योगो दुष्प्राप इति मे मतिः।
वश्यात्मना तु यतता शक्योऽवाप्तुमुपायतः॥

श्रीकृष्णवचसां सारः अयमेव प्रतिभाति यत् अभ्यासेन, वैराग्येण, वश्यात्मना च मनः स्वायत्तीकर्तुं पार्यते तदनु कार्यसिद्धिः सम्भवति स एव योगः। तपसि संलग्नानां महापुरुषाणां स्वरूपं निरूपयन् एकत्र भगवता विवेचितं वर्तते—

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः॥

अयं ध्यानयोगः कार्यसिद्धौ साधकः किन्तु अयमपि अभ्यासपरवशः। निवातस्थानस्थितदीपज्योतिरिव यदा मानवः स्थिरबुद्धिः सम्भवेत् तदा

तस्य मनसः स्थितेः किं वक्तव्यमवशिष्यते। तदा स नूनं लौकिकं पारलौकिकं वा कार्यं साधयितुं सुतरां समर्थः सम्भवति। भक्तिमार्गे तु भगवता भक्ता इत्थमाश्वस्ताः कृताः सन्ति—

अनन्यांश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥

भगवतः भक्तानाम् एकमेव कर्म यद्भगवतोऽनन्यभावेन स्मरणं तदनु सः स्वयमेव तेषां योगक्षेमस्य कर्ताऽस्ति। बुद्धियोगस्य चर्चाऽवसरे तेन लिखितमस्ति यद् ये भक्ताः मच्चित्ताः, मद्गतप्राणाः च भूत्वा परस्परमित्थमुपदिशन्ति तेभ्यः तादृशीं बुद्धिं प्रदाय तानात्मीयान् करोमीति।

इदं सर्वे सर्वदा वाञ्छन्ति येषु कार्येषु वयं संलग्नाः स्मः तेषु सर्वेष्वपि उत्तरोत्तरं सफलता स्यात्। तत्र सन्ति बहूनि कारणानि, यदिदं जगत् नैकस्मिन् सिद्धान्तेऽवस्थितम्। तत्र केऽपि परिश्रमस्य प्रशंसकाः तदपरे भाग्यवादिनः, इत्थं कार्यपद्धतौ विषमता आयाति। नीचाः विघ्नानां भयेन कार्यमेव न प्रारभन्ते, मध्यमकोटिकाः पुमांसः विघ्ने सति मध्ये एव विरमन्ति, सन्ति कतिपये दृढसिद्धान्ताः ये स्वकीयं मनः स्थिरीकृत्य कार्यं प्रारभन्ते; तेषां कार्यमध्ये यदि विघ्ना आयान्ति अपि तर्हि ते तानविगणय्य कार्यसमाप्तिं यावद् बद्धपरिकरास्तिष्ठन्त्येव, एतादृक् पुरुषपुङ्गवाः कर्मयोगिन इति कथ्यन्ते किन्तु जगति एतादृशानां सङ्ख्या अङ्गुलिगणनीया एव। कर्मसु अपि तानि एव कर्माणि श्रेष्ठानि कथ्यन्ते यानि परेषां हिताय कल्पन्ते तद्द्वारा आत्मनोऽपि श्रेयः स्यात्।

फलमस्तु मास्तु वा अस्माभिः कर्म कर्तव्यमिति विचार्य ये कर्मक्षेत्रे अवतरन्ति ते कर्मठाः कथ्यन्ते, तेषामेव जगति समादरो भवति। केवलं ये उदरम्भरिणो भवन्ति तेषु न कोऽपि स्निह्यति। लोके स एव उत्तमो योगी कथ्यते यः सर्वेषां परोपकाराय जीवन् कर्मपथान्न विचलति। अत एव गीतायाः पद्यमिदमुदाहरन् विरम्यते विस्तराद्—

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः।
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद् योगी भवाऽर्जुन॥

●

# विद्वान् सर्वत्र पूज्यते

प्रायः गुणवतां सर्वे गुणाः यथावसरं पूज्यन्ते नास्त्यत्र सन्देहावसरः। किन्तु साहित्यिके जगति एवंविधाः सूक्तयः विविधविषयजातमाश्रित्य बहुविधाः प्रचरन्ति तासु कवेः दृष्टिकोणस्यैव वैशिष्ट्यमुरीक्रियते सुधीभिः। यथा 'सर्वे गुणाः काञ्चनमाश्रयन्ति' इति, यदि नाम सर्वथा सत्यमिदं सुभाषितं तर्हि विद्याशौर्यकुलीनत्वादयो गुणाः सर्वथा व्यर्थतां यास्यन्ति। अत एतेन इदं सिद्धयति यदिमानि प्रायो वचनानि भवन्ति किन्तु स्वकीये क्षेत्रे तेषां महन्महत्वं विराजते। यदि कश्चन विद्वान् दुर्भाग्येण मूर्खसमुदाये गच्छेत् तर्हि स तत्र पूज्यते किम्?। विदुषः सम्मानं विदुषां मण्डली एव कर्तुं सक्षमा। यतो हि—

विद्वानेव हि जानाति विद्वज्जनपरिश्रमम्।
नहि वन्ध्या विजानाति गुर्वीं प्रसववेदनाम्॥

यः कोऽपि स्वपरिश्रमेण, गुरुकृपया; मातापित्रोः संस्कारपरम्परया वा विद्वान् भवति सः कामं कस्मिन्नपि कुलोत्पन्नः स्यात् किन्तेन विचारेण स आदरणीय एव भवति यतो हि अत्र कुलादिकस्य न तथा विचारो भवति यथा स्वाध्यायप्रवणतायाः। यथोक्तम्—

किं कुलेन विशालेन विद्याहीनस्य देहिनः।
अकुलीनोऽपि विद्यावान् देवैरपि स पूज्यते॥

धनादिसर्वसम्पत्समृद्धो राजा केवलं स्वदेशे पूज्यते किन्तु विद्वान् यत्र कुत्रापि याति स तत्रैव सम्मानं लभते। विदुषामीदृक् सम्मानमालोक्य केनापि वाग्विलासव्यसनिना कविवरेण निगदितं यत्—

विद्वत्त्वं च नृपत्वं च नैव तुल्यं कदाचन।
स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते॥

अतः मातापित्रोः परममिदं कर्तव्यं विराजते यत् ते स्वसन्ततीः यथाकथञ्चिन्नूनमध्यापयेयुः। अन्यथा तावेव दोषभाजनतां यास्यतः। एतदर्थमेव पद्यमिदं सुभाषितश्रेणीमारोहति—

माता शत्रुः पिता वैरी याभ्यां बालो न पाठितः।
न शोभेते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा॥

यदि पितरौ बालकमध्यापनाय प्रेरयतः दुर्भाग्यवशाद् बालकोऽध्ययने प्रवृत्तो न भवति तदपि तस्य दैवदुर्विलसितमेव। अयमपि विषयः सुभाषितसमृद्धो विराजते—

पुस्तकेषु च नाधीतं नाधीतं गुरुसन्निधौ।
न शोभते सभामध्ये हंसमध्ये बको यथा॥

अतः स्वशक्तिमनतिक्रम्य भविष्णुभिः स्वकीयाभिलषितो विद्याविषयोऽभ्यसनीयः। विद्यामन्तरा जीवन्नपि मृतवद् भवति मानवः। न चाऽस्य सम्मानं भवति अपितु स यत्र कुत्राऽपि याति तमालोक्य मूर्खोऽयमिति कृत्वा सर्वे जना उपहसन्ति। उपहासमयं जीवनं कस्य सुखाय कल्पते। अतएवोक्तम्—

येषां न विद्या न तपो न दानं ज्ञानं न शीलं न गुणो न धर्मः।
ते मृत्युलोके भुवि भारभूता मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति॥

मानवेन स्वसम्मानाय विद्या नूनमभ्यसनीया तया सह विनीतभावोऽप्यावश्यकः विनयेन रहिता विद्या औद्धत्यं जनयति। विषयमिमं प्रमाणयति सूक्तिरियम्—

विद्या विनयोपेता हरति न चेतांसि कस्य मनुजस्य।
काञ्चनमणियोगो नो जनयति कस्य लोचनानन्दम्॥

विद्यया युक्तः पुमान् यदि तस्याः प्रयोगं स्वकीयकार्यकलापेषु न करोति तर्हि तत्तस्य सा विद्या अनर्थकरी भवति। न ते वास्तविका विद्वांसः ये केवलं परोपदेशाय किं वा शास्त्रार्थेषु स्वकीयतर्कपुञ्जैः प्रतिवादिभटान् पराभवन्ति। ये स्वल्पमप्यधीत्य अधीतचरं विषयं मननपथवतारयन्ति त एव पूजार्हा विद्वांसः। ये च सरसया स्वकीयसूक्तिसरिता श्रोतृकर्णपरम्परां सिञ्चन्तः दुष्टानपि शिष्टान्, जडानप्यधिगतपरमार्थान्, अधार्मिकान् धर्मपथानुयायिनः, वितथभाषणपरान् अवितथान् चरीकर्तुं प्रभवन्ति त एव विद्वद्धौरेयाः संसारिणां हिताय जायन्ते। एतादृशानामेव पुरुषरत्नानां विषये नीतिविद्भिः कानिचन पद्यानि समुद्गीर्णानि येषां चर्चाऽत्र शीर्षकस्याऽस्य सुषमासंवर्द्धिनी विद्योतते—

अन्या जगद्धितमयी जगतः प्रवृत्तिरन्यैव कापि रचना वचनावलीनाम्।
लोकोत्तरा च कृतिराकृतिरङ्गहृद्या विद्यावतां सकलमेव गिरां दवीयः॥

अपरमपि— 

शास्त्रोपस्कृतशब्दसुन्दरगिरः शिष्यप्रदेयागमा
विख्याताः कवयो वसन्ति विषये यस्य प्रभोर्निर्धनाः ।
तज्जाड्यं वसुधाधिपस्य कवयो ह्यर्थं विनापीश्वराः
कुत्स्याः स्युः कुपरीक्षका न मणयो यैरर्घतः पातिताः ॥

अतः विद्यावद्भिः तादृग् सुयशः सर्वत्र लोके प्राप्यते यादृग् नान्यैः प्राप्तुं शक्यते । अन्ते च भरतवाक्यरूपेण स्वकीयमिदं पद्यं समुद्धरन्नुपसंह्रियते विषयोऽयम्—

विद्वांश्चेत् प्रभवेद् विनीतचरितो माधुर्यवाक् सारवित्
सर्वेषां हितकर्मसाधनरतः सर्वोपदेशादरः ।
वाग्मी सद्व्यवहारवित् प्रतिभया युक्तः प्रभोर्वत्सलः
सोऽयं पूज्यतमः सुधीकुलजनुर्धन्यो विदामग्रणीः ॥

## विद्याधनं सर्वधनप्रधानम्, किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या, उत्तमं हि धनं विद्या दीयमानं न हीयते, विद्या ददाति विनयम्, विद्ययाऽमृतमश्नुते

अस्मिन्नसारे संसारे धनमेव सारं मन्यमाना उद्योगेन, भाग्येन, व्यापारेण, सेवया च धनमुपार्जयन्तो जनाः जर्जरतां यान्ति तथापि उपार्जितं धनं मनसस्तोषाय न जायते । भाग्यहीनाः यदि कथञ्चित् कुत्रचित् धनसङ्ग्रहे सफला अपि भवन्ति तदनु तेषां तद्धनं राजा कररूपेण, पुत्रादयो बान्धवाश्च दायभागरूपेण गृह्णन्ति, चौराः चौर्यं कृत्वा, लुण्टाकाः लुण्ठयित्वा तत्सर्वं बलान्नयन्ति, धिगहो ! इयं लक्ष्मीः चञ्चला न क्वापि स्थिरत्वमुररीकरोति । एतदतिरिक्तम् अनुपममेकं धनं यद् उपर्युक्तदोषैः सर्वथा रहितं वर्तते तदस्ति विद्याधनम् । अस्मिन् विषये विद्वद्भिः विवेचितमस्ति यत्—

न चौरहार्यं न च राजहार्यं न भ्रातृभाज्यं न च भारकारि ।
व्यये कृते वर्धत एव नित्यं विद्याधनं सर्वधनप्रधानम् ॥

'व्यये कृते वर्धत एव नित्यम्' इत्याकारिका विशेषता केवलं विद्याधनस्य विलोक्यते न चान्यस्य क्वापि श्रुतिविषयमागच्छति। अपरैरपि विद्याधनमित्थं संस्तुतं विलसति—

अपूर्वः कोऽपि कोशोऽयं विद्यते तव भारति।
व्ययतो वृद्धिमायाति क्षयमायाति सञ्चयात्॥

इति व्यतिरेकालङ्कारवर्णनमुखेन कविना विद्याधनस्य संस्तवः प्रतिपादितः। यथा अन्यानि धनानि भाराय जायन्ते तेभ्यः स्थानस्य, विश्वसनीयरक्षापुरुषणां च आवश्यकता भवति न तथा विद्याधनाय। इदं विद्याधनम् उपार्जितं चेत् सर्वथास्वायत्तं न केवलमिह लोके साहाय्यं वितनुते अपितु अपरत्राऽपि सहगामि भवति 'पूर्वजन्मसु या विद्या' इतिवत् सर्वैरिदं श्रूयते, अनुभूयते च। पश्यन्तु—एकस्यैव गुरोश्छात्राः बहुविध-प्रतिभावन्तो दृश्यन्ते,कश्चन गुरोरुपदेशश्रवणसमकालमेव तद् गृह्णाति अपरः अभ्यासानन्तरं तदधिगच्छति, अन्यच्च भृशं प्रयतमानोऽपि नात्मसात्करोति। अत्र यः श्रवणसमकालमेवाधिगच्छति स नूनं पूर्वज-न्मोपात्तविद्य इति वयं मन्महे। अमूल्यम् अहार्य्यम् अक्षय्यञ्च धनं विद्याधनम्। न च एतस्य किमपि अन्यद्धनं तुलनामधिरोहति।

शास्त्रकारैः शस्त्रविद्यातोऽपि शास्त्रविद्या श्रेष्ठेति प्रतिपादितम्। यतो हि शस्त्रविद्या वार्धके हास्याय कल्पते किन्तु शास्त्रविद्या विस्मर-णमन्तरा न कदापि विकृतिं प्रयाति। सन्ति जगति भूयांसो मानव-ब्रुवाः येऽनधिगतविद्या अपि जीवन्तो दृश्यन्ते, तेषां विद्याविहीनानां जीवनं कथमस्ति विषयेऽस्मिन्नित्थं प्रपञ्चितमुपलभ्यते—

शुनः पुच्छमिव व्यर्थं जीवितं विद्यया विना।
न गुह्यगोपने शक्तं न च दंशनिवारणे॥

कथमिदं पद्यमन्वर्थतां याति चेद् विविच्यते। यथा—कुक्कुरस्य पुच्छं वक्रत्वान्न गुह्यगोपनोपयोगि भवति न च दंशनिवारणक्षमम् अतएव अकिञ्चित्करं भवति तत्, तथैव विद्याविहीनपुरुषस्य जीवन-मपि, यतो हि पुरुषस्य जीवनं विधात्रा न केवलं भोगाय आविष्कृतम् अपितु पुमर्थचतुष्टयसम्पादनाय। यदि मनुष्यशरीरम्प्राप्याऽपि स तत्र असाफल्यं वृणोति चेत् तर्हि तद् धिक्। यतो हि 'किं कर्म किमकर्मेति

कवयोऽप्यत्र मोहिताः' । इति गीता वचनमनुसृत्य यदि वयं विचारयामः तर्हि इदं निश्चीयते यत् कवयो (विद्वांसः) अपि यत्र मुह्यन्ति तत्र विद्याविहीनानां का गतिः, हन्त ! दैवमेवाऽत्र प्रमाणम् । अतः ते विद्याविहीनाः पशुवत्स्वकीयं जीवनं यापयित्वा पशुवदेव म्रियन्तेऽपि, अतएव तेषां जीवनं धिक्कृतम् । मानवानां सर्वे समारम्भाः प्रथमं स्वोदरपूरणाय तदनु यस्य यथा प्रवृत्तिर्भवति तत्र तेषां विनियोगो भवति । विवेकरहितोऽपि शुकः पठतां वचोऽनुकुर्वन् उदरपूर्तंते पर्याप्तम् अन्नादिकं पञ्जरमध्यस्थित एव प्राप्नोति । ततः यदि विवेकी मानवः शास्त्राभ्यासं कुर्यात् कस्तत्र सन्देहस्तस्योदरपूरणे, उक्तमपि—'सद्विद्या यदि किं धनैः' । विद्या मनुष्यजीवने किं किं नाट्यं नाटयति एतस्य सम्यक् परिचयोऽधस्तने पद्ये क्रमेण निभालयन्तु—

विद्या नाम नरस्य रूपमधिकं विद्या हि गुप्तं धनं
विद्या भोगकरी यशःसुखकरी विद्या गुरूणां गुरुः ।
विद्या बन्धुजनो विदेशगमने विद्या परा देवता
विद्या राजसु पूज्यते नहि धनं विद्या विहीनः पशुः ॥

अन्यदपि—

विद्या नाम नरस्य कीर्तिरतुला भाग्याश्रये चाश्रयो
धेनुः कामदुघा रतिश्च विरहे नेत्रं तृतीयञ्च सा ।
सत्कारायतनं कुलस्य महिमा रत्नैर्विना भूषणं
तस्मादन्यमुपेक्ष्य सर्वविषयं विद्याधिकारं कुरु ॥

अतएव पुरुषोत्तमैः सर्वमन्यद्धनं विहाय विद्याधनं स्वायत्तीकरणीयम् । यस्य स्वाधीनतां गते सति अन्यानि धनानि अहमहमिकया पुरुषं समाश्रयन्ति ।

●

## बुद्धिर्यस्य बलं तस्य, दोर्घौ बुद्धिमतो बाहू

विद्यायाः परिपाक एव बुद्धिरूपेण पर्यवस्यति, अतःविद्यातोऽपि बुद्धिर्गरीयसीति सुधियां मतम् । विदुषः अपेक्षया बुद्धिमतः स्थानम् महत्तरम् । शीर्षकोऽयं यत उद्धृतोऽस्ति स श्लोकः 'सिंहशशक' कथा-

त्मकः, इति तु सर्वे जानन्त्येव। विषयेऽस्मिन् विष्णुशर्मप्रणीतपञ्चतन्त्रगता एका मनोरमा गाथा प्रसङ्गानुरूपमत्रोद्ध्रियते—

एकदा सञ्जीविनीविद्याविशारदाश्चत्वारः सखायः कुत्रचिद् धनमर्जयितुं गन्तुं प्रवृत्ताः, यावत् किञ्चिदध्वानं यान्ति तावत्तैः कस्याऽपि प्राणिनः अस्थिसञ्चयोऽवलोकितः तत्र ते सर्वेऽपि उपविश्य विचारयामासुः। यदस्माभिः स्वकीयविद्यायाः अनुभवोऽद्य प्रत्यक्षीकरणीय इति निश्चित्य तेषु प्रथमः अस्थिशकलसन्धाने प्रवृत्तो वभूव। यदा तेन सर्वाणि अस्थीनि संयोजितानि तदा तेषु चतुर्थो विद्यारहितः किन्तु बुद्ध्या युक्त आसीत् स उक्तवान्—भो भो भ्रातरः! अयं सिंहः निष्पाद्यते तदलं प्रयासेन। तदा अन्येनोक्तम्–एकेन स्वविद्यायाः परीक्षा सम्यक् प्रदत्ता तर्हि अहमेव कथं वञ्चितो भवेयम्। तदनु द्वितीयेन मांसचर्मादिभिः स सर्वाङ्गपूर्णः कृतः, पुनरपि बुद्धिजीविना निषिद्धः किन्तु तेन नाङ्गीकृतम्। यावत्तृतीयस्तस्य सिंहस्य सञ्जीवनाय प्रवृत्तोऽभवत् तावद् बुद्धिजीविना प्रार्थितः, भो भ्रातः! यावदहं वृक्षमारोहामि तावत् त्वया एतस्मिन् प्राणसञ्चारो न कार्यः, इत्युक्त्वा स सत्वरं प्रोन्नतं वृक्षमारूढः, तदन्तरमेव तेन तृतीयेन तस्मिन् सिंहे प्राणसञ्चारः कृतः, प्राणसञ्चारसमकालमेव तेन ते त्रयोऽपि विद्यावन्तः सपदि कवलीकृताः केवलं स वुद्धिजीवी एवाऽवशिष्टःस्वेन बुद्धिबलेन। अतएवोक्तम्–

मतिरेव वलाद् गरीयसी यदभावे करिणामियं दशा।
इति घोषयतीव डिण्डिमः करिणो हस्तिपकाहतः क्वणन्॥

प्राणिषु सर्वाधिकः स्थूलः शक्तिसम्पन्नः गजः अपि बुद्धिमतः पुरुषस्य वशे तिष्ठति, इत्यहो! बुद्धेः महिमा। प्रसङ्गेऽस्मिन् बुद्धेर्महिमानं कथयत् पद्यमिदं समुद्ध्रियते—

श्रियः प्रदुग्धे विपदो रुणद्धि यशांसि सूते मलिनं प्रमार्ष्टि।
संस्कारशौचेन नरं पुनीते शुद्धा हि बुद्धिः किल कामधेनुः॥

कियदुपकारं तनुते शुद्धा बुद्धिः, यथाहि—बुद्धियुक्तः पुमान् धनेन समृद्धो भवति, विपत्तीः निस्तरति, यशसा परिवारितो जायते, किमधिकेन बुद्धिमान् यद् यत् कामयते तेन तेन युक्तो जायते। नीतिविदां वरिष्ठः चाणक्यमुनिः एकाकी एव प्रवृद्धस्य नन्दवंशस्य विनाशे

प्राभवत्, एतत्सर्वं तस्य बुद्धेः प्रभाव एव। संसारे बहुविधानि बलानि सन्ति तेषु शारीरिकं बलं, सैन्यबलं, धनबलं च इमानि सर्वाण्यपि बुद्धिबलस्य तुलां नाधिरोहन्ति। एतस्य प्रसङ्गस्य सम्पुष्टिः निम्नोक्त-सुभाषितसमुच्चयेन क्रियते—

न धनं न च शास्त्रञ्च न सैन्यं न सुहृद्बलम्।
तथापि महती येषां बुद्धिस्ते बलवत्तराः॥

अन्यच्च—

येषां बुद्धिबलं नास्ति नास्ति विद्याबलं तथा।
वपुषैव मताः स्थूलास्ते धराभारकारकाः॥

अपरमपि—

बध्नन्ति सिंहान् रमयन्ति सर्पान् दन्तावलान्निर्मदयन्ति कामम्।
श्रयन्ति साम्राज्यपदप्रभुत्वं बुद्धिप्रभावैकसमेधितार्थाः॥

अद्याऽमुष्मिन् वैज्ञानिके युगे बुद्धिबलोद्भूतानि एतादृग् आश्चर्य-कराणि वस्तूनि दृष्टिगोचरतां यान्ति येषां बलेन प्राचीनानि सर्वाणि बलानि न्यक्कृतानि। पश्यन्तु श्रीमन्तः यत्कार्यम् एकस्मिन् काले सहस्रशो बलवन्तो जनाः कर्तुं न प्राभवन्तिस्म तत्कार्यं रेलयानं बुद्धिबलेन निष्पन्न-स्येञ्जिनयन्त्रसाहाय्यात् हेलया एव करोति। एतावत् शक्तिसम्पन्नं तद् ऐञ्जिनयन्त्रं यदा लौहपथतः प्रभृश्य भूमौ पतति तदा तस्य उत्थापनार्थं क्रेनाऽभिधस्य यन्त्रस्योपयोगः क्रियते तद्विद्यैः। यत्समाचारजातं जनाः पुरा बहुभिर्दिवसैः लब्धुं समर्थाः आसन्, अद्य तदेव बुद्धिबलेन तार, टेलीफोन, टेलीविजन, वायरलेस-प्रभृतियन्त्रैः तत्क्षणमेव ज्ञातुं प्रभ-वन्ति साम्प्रतिकाः सुधियः।

पुरा राजानो महाराजानश्च बुद्धिबलमाश्रित्यैव महत्कार्यसञ्चा-लनं विदधतिस्म। यतोहि 'दीर्घौ बुद्धिमतो बाहू' बुद्धिमान् मनुष्यः स्व-स्थानस्थितोऽपि सर्वं जगत् स्वकीयबुद्धिबलेन करामलकवत् पश्यति। तत्रस्थ एव यत् कर्तुमभिलषति तदेव सफलतया करोति। पुरातनैर्भार-तीयैर्महर्षिभिः ये ये दार्शनिकाः सिद्धान्ताः स्थिरीकृताः यानवलोक्य पाश्चात्या विद्वांसः मन्त्रमुग्धा इव भूत्वा भृशं प्रशंसन्ति, तत्सर्वं तेषां सत्वगुणप्रभवाया बुद्धिकल्पलताया एव सुमधुरं फलम्।

अतः सद्बुद्धेः संरक्षणं यथा भवेत् तथा प्रयतितव्यम् । येन सर्वेऽपि बलिनस्तस्य स्वयमेव दासतां स्वीकुर्युः ! यतोहि बुद्धिरेव जीवनस्य सर्वस्वं तदभावे नूनं विनाश एव । यदुक्तं भगवता श्रीकृष्णेन गीतायाम्- "बुद्धिनाशात् प्रणश्यति' । अतः को नाम एतादृङ्मतिहीनः स्यात् यः स्वकीयं विनाशमभिलषेत् । अतएवोक्तं निवन्धकृता—

बुद्धिर्यस्य बलं तस्य सत्यमेतन्न संशयः ।
बुद्धिहीना विपद्यन्ते शक्तिमन्तोऽपि मानवाः ॥



## सङ्घे शक्तिः कलौ युगे, संहृतिः कार्यसाधिका

पुरा युगेषु पुरुषेषु बहुविधा अनिर्वचनीयाः शक्तय आसन् । यथा-मन्त्रशक्तिः, शाप-वरदानयोः शक्ती, सत्यतपस्तेजसां शक्तयः पृथक्-पृथक् रूपेण वर्णिताः शास्त्रेषु अवलोक्यन्ते, अतस्ते विभिन्नशक्ति-सम्पन्नाः उपकर्तुं, वशीकर्तुं दण्डयितुं वा सुतरां भवन्तिस्म समर्थाः । अस्मिन् पापिनि कलौ सत्यतपस्तेजसां चर्चा शास्त्रगह्वरेषु निभृता सुखेन सन्तिष्ठते किन्तु सा लोके उदाहरणार्थं क्वचित् कुत्रचित् आंशि-करूपेण सूक्ष्मेक्षिकया विलोकयितुं शक्यते । यत्र ताः शक्तयो दृश्यन्ते-ऽपि तत्र वास्तविकता तु नाममात्रिका भवति आडम्बरस्य विशेषरूपेण दर्शनं जायते । अतः समाजः न तत्र श्रद्दधाति । श्रद्धामन्तरा कथं जनस्तत्राऽनुरज्येत । इत्यादिविषयजातं स्मारं-स्मारं मनीषिभिः एष निर्णयोऽकारि यत् कलौ यदि काऽपि शक्तिः सम्भवा चेत् सा सङ्घा-त्मिका एव ।

अत्र दृष्टान्तमेकमुदाह्रियते-कस्मिंश्चित्स्थाने कस्यचिद् वृद्धस्य चत्वारः पुत्रा आसन् । ते सर्वदा परस्परं विवदमानाः न कस्याऽपि वचः स्वीकर्तुम् उत्सहन्तेस्म । अथ कालक्रमेण वृद्धस्य मरणाऽवसरः समायातः तेन चत्वारोऽपि स्वसुताः समाहूताः । यदा ते आगत्य उपविष्टाः तदा तान् साश्रुनेत्रः पिता गद्गदया गिरा कथञ्चिद् वक्तुमारेभे ! शृणुत पुत्राः ! अन्तिमं मद्वचः । तेऽपि पितुः मरणकालिकीं दशामवलोक्य विनीतभावेन प्रोचुः,किमाज्ञापयन्ति पितृचरणाः कथयन्तु निःसङ्कोचम् । स उवाच—यूयं चत्वारः परस्परं शत्रुवद्व्यवहरन्तः कलहेन विवादेन

च कालं यापयथ, नैतत् शोभनम् । अस्तु, मदाज्ञया एकम् एकं काष्ठं सत्वरमानयत । श्रुत्वा च ते आनीतवन्तः । पुनः वृद्ध उवाच—एतानि काष्ठानि रज्वा बद्ध्वा क्रमेण त्रोटयत । यदा ते तानि बद्ध्वा त्रोटयितुं प्रवृत्ताः तदा न कोऽपि साफल्यमवाप । तदा पुनरपि स उवाच–पुत्राः ! रज्जुं निःसार्य प्रत्येकं काष्ठं पृथक्-पृथक् त्रोटयत । तदा तैः सर्वाणि काष्ठानि त्रोटितानि । तदा वृद्धः तानुपदिष्टवान्—एतेन अभिनयेन युष्माभिःका शिक्षा लब्धा ? किन्तु ते तूष्णीं स्थिताः । तदवलोक्य स ब्रवीति—यथा बद्धं काष्ठसञ्चयं भङ्क्तुं यूयं न समर्था जाताः पृथक्-पृथक् काष्ठानि त्रोटयितुं समर्था अभवत । तद्वदेव यदि यूयं भ्रातरः स्नेहरज्जुबद्धाः स्थास्यथ तदा मदभावेऽपि युष्मान् त्रोटयितुम् अथ च विनाशयितुं न कोऽपि साहसं करिष्यति । इत्येव मदादेशः । इतः परं युष्माकं यादृशी इच्छा स्यात्, इति कथयन् स प्राणान् जहौ ।

तद्दिनात्प्रभृति ते चत्वारोऽपि भ्रातरः स्निग्धव्यवहारमापन्नाः सर्वैः समाद्रियमाणाश्च सुखम् अतिष्ठन् । एषा सङ्घशक्तेः प्रभुता । उक्तमपि—

वहूनामप्यसारणां समवायो हि दुर्जयः ।
तृणैरावेष्टचते रज्जुर्येन नागोऽपि बद्ध्यते ।।

पश्यन्तु तृणानि, का शक्तिस्तेषां यानि सर्वदा सर्वेषां पादैमृद्यमानानि न कदाचिदपि उन्नतिं कामयन्ते । तेषामपि समवायो मदोन्मत्तं गजराजं बद्धुं प्रभवति, एषा सङ्घटनस्यैव शक्तिः । प्राचीनतमस्येतिहासस्य पुनरावृत्तिं कुर्वन्तु भवन्तः । श्रीरामचन्द्रः कपिसङ्घस्य साहाय्यमवाप्य लङ्केश्वरं जिगाय, किमधिकं कोशकारैः शिरसोऽपरपर्यात्वेन उत्तमाङ्गशब्दस्य निर्वचनं कृतमस्ति, कथं तदुत्तमाङ्गमिति विषये सुभाषितकारोक्तिं निरूपयत—

बह्वीं प्रतिष्ठामाप्नोति पञ्चभिः सेवितो नरः ।
उत्तमाङ्गं शिरः प्रोक्तं पञ्चेन्द्रियसमन्वितम् ।।

अत्र 'पञ्चभिः' इत्येषः शब्दो महन्महत्वमावहति । तद्यथा–कस्यामपि सभायाम् एकः सभापतिः अपरे जनाः पञ्च इति कथ्यन्ते, तेषु जनतायाः धार्मिकी दृष्टिः भवति, इमे यद् वक्ष्यन्ति तद् हितावहं भवेदिति । धर्मकार्येषु अपि पञ्चदेवोपासना चिरात् प्रतिष्ठिता राजते ।

एषा सर्वत्र सङ्घटनात्मिका एव दृष्टिः। विशेषतः कलियुगे सङ्घे शक्तिः भवति, इत्येष डिण्डमघोषो विराजते, तस्य स्वरूपम् अस्माकं सम्मुखीनमेवास्ति।

अद्य अस्माकं भारते श्रीगान्धिप्रभृतिनेतॄणां कृपया या स्वराज्यश्रीर्विलसति सा नूनं सङ्घात्मिकाशक्तेरेव प्रभावं प्रकटयति। समये समये भारतेऽस्मिन् विदेशीयानां यानि यानि आक्रमणानि सञ्जातानि तेषां यः सफलो विरोधः भारतेन प्रकटीकृतः स सङ्घटनात्मिकायाः शक्तेरेव साहाय्यात्। पाकिस्तानदेशस्याऽऽक्रमणं किं वा चीनस्याऽऽक्रमणं विगतवर्षेषु यत्समभवत् तस्य सम्मुखे अन्तःसारमयेन कुलिशवत् कठोरेण लौहवद्दृढेन हिमालयवत्स्थिरेण भारतेन स्वपराक्रमस्य यो हि स्थाने परिचयः प्रदत्तः तस्य मूले भारतीयानां सङ्घटनात्मिकायाः शक्तेरेव सुमहान् प्रासादः पर्यवस्थित आसीत्। यथा अस्माभिः भारतीयैरद्यावधि स्वकीयाया एकतायाः परिचयो विभिन्नराष्ट्रवासिनां पुरः समुपस्थापितः तथैव सर्वदा भवेदिति। विषयेऽस्मिन् ग्रन्थकृतः सूक्तिरियं विराजते—

सत्यवाचि युगे सत्ये त्रेतायां धर्मकर्मणि।
द्वापरे यज्ञदानादौ सङ्घे शक्तिः कलौ युगे॥

●

## काशीहिन्दुविश्वविद्यालयः

सुरगङ्गाया भागीरथ्याः पश्चिमे तटे वर्त्तमानः, सुरभारतीसेवनादर्शरूपो भारतीयसंस्कृतेरन्यतमः समर्थकः, विश्वस्य विद्यानामालयः, महामनसा पण्डितप्रवरेण मदनमोहनमालवीयमहाभागेन माघशुक्लवसन्तपञ्चम्यां १९७३ संवति संस्थापितः, महाशयानां परमोदारचेतसां राज्ञां श्रेष्ठिनाञ्च सहयोगेन पल्लवितः, विद्यार्थिकदम्बकेन सफलीभूतः विदुषां शास्त्रचर्चया आलवालायितःसंसिक्तश्च सम्प्रति कल्पवृक्षायितः, एष काशीहिन्दुविश्वविद्यालयः कस्य सचेतसो धीमतश्चित्तं नानन्दयति।

अयं विश्वेषां जनानां विद्यायाःआलयः किं वा विश्वस्मिन् प्रसृतानां विद्यानाम् आलयःइति उभयथाऽपि स्वं नाम चरितार्थयति। अस्य संस्थापकः स्वनामधन्यः श्रीमान् प्रातःस्मरणीयो मालवीयमहोदयः प्रयाग-

तीर्थस्य निवासी आसीत्। यथा त्रिपथगा गङ्गा प्रयागाद् आगत्य वाराणसीं पुनाना प्रवहति, तथैव मालवीयमहोदयोऽपि प्रयागात् सत्यं त्यागं तपः च एतत्त्रयमादाय अत्र स्वकीयं समग्रं प्रभावं विश्वविद्यालयस्थापनरूपेण प्रकटीचकार।

अखिलगुणगणमण्डितस्यैतस्य प्रभावातिशयादेव राजभिः श्रेष्ठिभिः भूस्वामिभिः (जमीदार) यथाशक्ति धनं भूमिश्च प्रदाय विश्वविद्यालयस्य स्थापनायाम् अमुष्य महापुरुषस्य महान् सहयोगः समकारि। अयं हि महामना भारतमातुः दुर्ललितो वत्सः। अनेन भारतभारतीसंरक्षणाय, भारतीयसंस्कृतिसंवर्धनाय तथा समस्तानां वेदाङ्गनाम् पठनस्य पाठनस्य च, अस्मिन् सुव्यवस्था कारिता। अनेन देशे देशे भ्रमता यत्र द्रव्यरत्नं सुधीरत्नं च समासादितं तदुररीकृत्य अत्र विनियोजितम्। सत्यमेव स महामना आसीत्। तस्य विशालहृदये नासीत् उच्चनीचभावना न च स्वपरभावना, तेन स्वप्रयासैः विश्वविद्यालयोऽयं विश्वजनीनभावोपपन्नः सम्पादितः।

सम्प्रति एतस्य मुख्यद्वारे महामनसः कांस्यमयीमूर्तिः अद्याऽपि तत्र समागतानां सुस्वागतं व्याहरन्तीव, लक्षशो जनान् सम्बोधयन्तीव, परोपकारीपुरुषः कदाऽपि विश्रमं नेच्छतीति सूचयन्तीव, अहमेतस्य संवर्द्धनाय प्रेत्याऽपि अहर्निशं द्वारस्थप्रहरीव यत्किमपि कर्तुमुद्यतोऽस्मीति दर्शयन्तीव, अस्मिन् विश्वविद्यालये यत्किमपि परिवर्तनं संवर्धनं वा भवेत् तन्मदनुज्ञया एव स्यादिति हेतोस्तिष्ठन्तीव किं वा यावन्मदीया शक्तिरासीत् तावन्मया एतदर्थं यथाशक्ति प्रयतितं सम्प्रति वार्द्धक्याद् उत्तराधिकारिषु सञ्चालनभारं समर्प्य तं विहाय द्वारदेशान्निर्गच्छन्तीव विराजमाना कामप्यपूर्वां सुषमामातनोति।

पवित्रतमायां भारतावनौ स्थितोऽयं विश्वविद्यालयः राजमार्गैर्विभक्तः, विविधभाषा-कला-विज्ञानादिसङ्कायैः संशोभितः, श्रेष्ठिनां धनसमुच्चयनिर्मितच्छात्रावासैः परितः परिवृतः, पत्रालय-चिकित्सालय-धनालय- (बैंक) क्रीडालयादिभिः परिवर्द्धितः, गोशालाभिः पावितः, पुष्पोद्यानभैषज्योद्यान-सस्यसम्पद्भिश्च सुवासितः, नीरजीकृतः, परिपूरिश्च विद्यानगरम्। [illegible] महिलानाम् अनु-

सन्धानेच्छुकानाञ्च सौविध्यसम्पादनाय पुस्तकालयानां, निवासस्थानानां भोजनालयानां यानानाञ्चाऽत्र सुव्यवस्था विदेशीयानामपि मनांसि मोहयति किम्पुनः स्वदेशीयानाम् ।

महामनसः चरमा हार्दिकी इच्छेयमासीद् यदत्र एकं विश्वनाथ-मन्दिरमपि निर्मीयेत, तदर्थमपि सिद्धसङ्कल्पेन सुकृतिना तेन बहुप्रय-तितं, हन्त ! तथापि तस्य जीवनकाले मन्दिरस्य पूर्तिर्नाऽभवत् यदा स मृत्युशय्यायामासीत् तदा धनिनां मूर्धन्येन सम्प्रति स्वर्गतेन श्रीमता बलदेवदासबिडलामहोदयेन स आश्वासितः । यदि काऽपि द्रव्यसम्ब-न्धिनी न्यूनता एतस्य पूर्तौ समागच्छेत् तर्हि तामहं पूरयिष्ये । अमृत-वृष्टिप्रतिमं तस्य तद् वचः समाकर्ण्य महामना निश्चितः सन् सपदि सुखेन दिवं गतः । अत एव दानिनां पङ्क्तौ तस्य नाम्नः सम्मुखे अद्या-वधि द्रव्यराशिः नोल्लिखितः विश्वविद्यालयस्थे विश्वनाथमन्दिरे । सम्प्रति भगवतो विश्वनाथस्यैव कृपया विश्वविद्यालयेऽस्मिन् विश्व-नाथमन्दिरस्य साङ्गोपाङ्गा पूर्तिः सम्पन्ना । मन्दिरमिदम् उत्तरभार-तस्य सर्वाणि मन्दिराणि अतिशेते स्वकीयोच्चतया ।

काश्यां पुरा एकमेव विश्वनाथमन्दिरमासीद् इदानीं त्रीणि विश्व-नाथमन्दिराणि सम्पन्नानि । महाराज्ञी अहिल्याबाई यस्य स्थापनाम-करोत् तत् सर्वप्राचीनम्प्रथमं, तदनु श्रीमत्स्वामिवर्य्यकरपात्रमहाभाग-स्थापितं द्वितीयम्, अन्ते मालवीयमहाभागेन स्वकीये विश्वविद्यालये स्थापितं तत् तृतीयम् । अमुष्मिन् विश्वविद्यालयस्थे विश्वनाथमन्दिरे यानानां सौकर्य्येण सौन्दर्यदृष्ट्याऽपि च दूरदूरतरेभ्यो देशेभ्यो दर्शनार्थं सहस्रशो यात्रिणः प्रतिदिनमागत्य कृतार्थयन्ति आत्मानम्, प्रशंसन्ति च मालवीयमहाभागस्य समस्तं कृत्यजातम् ।

इत्थमयं विश्वविद्यालयः विश्वस्य अपूर्वो निधिः, यस्य सम्पूर्णं श्रेयः महामनसश्चरणयोरर्प्यते सादरं जनैः । अन्ते च भरतवाक्यायितमात्मी यम्पद्यम् प्रस्तूयते—

मालवीयमहाभाग-प्रयत्नपरिवर्द्धितः ।
विश्वविद्यालयो भाति धीमतां कल्पवृक्षवत् ॥

## अस्माकं विद्यालयः, विद्यालयस्य वार्षिकोत्सवः

उत्तरवाहिन्याः भागीरथीगङ्गायाः तटे विराजमानायां वाराणस्यां स्थितोऽयम् अस्माकं विद्यालयः अतीव प्राचीनः अस्ति। प्रातःस्मरणीयैः अस्य संस्थापकैः स्वं सर्वस्वं समर्प्य अस्य स्थापना कृताऽऽसीत्। ततः परं योग्यतमैः सञ्चालकैः क्रमशः अयं संवर्धितः संरक्षितश्च। नगरमध्यस्थितम् एतस्य विशालं भवनं स्वकीयां कामपि अपूर्वां शोभां दधाति। अस्मिन् भवने पञ्चाशत् प्रकोष्ठकानि सन्ति एकं च सुविस्तीर्णं सभासदनमपि विराजते। यस्मिन् यदा कदा गुरूणां सहयोगेन अभिनयस्य आयोजनं कुर्वन्ति विद्यार्थिनः। यदि कदाचित् कोऽपि महापुरुषः शिक्षाविभागस्य अधिकारी वा समागच्छति चेत् तस्य समादरः भाषणस्याऽऽयोजनमपि अत्र क्रियते सपरिकरैः श्रीमद्भिः प्रधानाचार्यमहोदयैः।

भवनस्याऽस्य बहुषु प्रकोष्ठकेषु विविधविषयाणां पाठनं विविधासु कक्षासु क्रियते। अयम् अस्माकं विद्यालयः प्रातः दशवादनादारभ्य चतुर्वादनं यावत् प्रचलति। मध्ये मध्याऽवकाशस्यापि व्यवस्था सर्वेषां विश्रमाय विहिता वर्तते। अत्र विद्यालये पञ्चविंशति योग्यतमाः प्राध्यापकाः स्वान् स्वान् विषयान् महता परिश्रमेण पाठयन्ति। अस्मिन् विद्यालये हिन्दीं संस्कृतं राजनीतिशास्त्रम् अर्थशास्त्रम् इतिहासं भूगोलं मनोविज्ञानं विज्ञानं जीवविज्ञानं भौतिकविज्ञानं च यथारुचि पठन्ति विद्यार्थिनः। अत एतस्य परीक्षाफलञ्च सर्वोत्तमं भवति। यद् दृष्ट्वा शिक्षाऽधिकारिणः एतस्मै अधिकाधिकां सहायतां प्रयच्छन्ति प्रतिवर्षम्।

अध्ययनेन सह छात्राणां मनोविनोदार्थम् अत्र क्रीडाविभागोऽपिसुसमृद्धःशोभते। आधुनिकयुगोचितसर्वविधक्रीडासाधनानि अत्र उपलभ्यन्ते छात्राणामभिरुचिमनुसृत्य तेभ्यः क्रीडनकानि प्रदीयन्ते क्रीडाधिकारिभिः। सायं क्रीडनानन्तरं क्रीडाकर्मकरः छात्रेभ्यः तान्यादाय सङ्गृह्णाति। अपरस्मिन् दिने पुनः तेभ्यः प्रयच्छति। इत्थं विद्यालये प्रतिदिनं क्रीडनेन लब्धक्रीडापाटवास्ते विद्यार्थिन एकस्माद् विद्यालयाद् अन्यं विद्यालयं जेतुं यतन्ते, एवं क्रमेण तेषाम् उत्साहवृद्धिर्यदा जायते तदा विदेशेषु अपि ते गत्वा स्वकीयविद्यालयस्य यशसः पताकां समुन्नतां कुर्वन्ति। साम्प्रतं छात्रेषु यष्टिकन्दुकक्रीडायाः (हाकी) प्रचारः सुबहुलः प्रसृतः। पुरा

पादकन्दुकक्रीडायाः प्रचलनम् आसीत् किं वा कवड्डीखेलां खेलन्ति स्म। इयं खेला शरीरस्वास्थ्यसंवर्धिनी व्ययेन रहिता च भवति।

अस्माकं विद्यालये व्यायामस्याऽपि शिक्षा प्रदीयते। पुरा व्यायामव्यसनिषु भीमादयः सुप्रसिद्धा आसन्। व्यायामेन पुरुषः न केवलं बलवान् भवति अपितु तस्य विविधरोगाणां प्रशमः च सपदि सञ्जायते। अत्र छात्रेभ्यः एन. सी. सी. इत्याख्या सैनिकशिक्षा अस्त्र-शस्त्रप्रयोगशिक्षाऽपि नियमानुसारं दीयते। यदा कदा देशस्य सुरक्षाया भारः आगच्छेत् चेत् तर्हि एते शिक्षिताः छात्रा अपि समये साहाय्यं विधातुं समर्था भविष्यन्ति। आत्मनः सुरक्षा तु भविष्यत्येव। यः शिक्षणकाले विशिष्टां योग्यतां बिभर्ति तं सर्वकारः उच्चाधिकारिपदेषु नियुनक्ति।

इत्थम् अयम् अस्माकं विद्यालयः छात्राणां हितावहः, अस्मिन् विद्यालये प्रतिवर्षं सर्वैः सम्भूय सत्रारम्भमहोत्सवः, वर्षान्ते च वार्षिकमहोत्सवः महता समाराहेण क्रियते। सत्रारम्भमहोत्सवे कञ्चन शिक्षाधिकारिणं विद्यावृद्धं वा आमन्त्र्य तस्य आशीर्वचोभिः सह सत्रारम्भणं क्रियते।

वार्षिकोत्सवे तु छात्राणामभिभावका नागरिकाश्च आहूयन्ते। महतो वितानस्य अधस्तात् शताधिकानि काष्ठासनानि भाटकं दत्वा आनीयन्ते येषु अधिकारिणः, अभिभावकाः, नागरिकाश्च उपविशन्ति। तेषां पृष्ठतः स्थिताः छात्राः शान्तिव्यवस्थां कुर्वन्ति, सति अवसरे उपविशन्ति च। तदनु कार्यक्रमारम्भं प्रधानाचार्यः करोति। क्रमेण अध्यक्षवरणं, माल्यार्पणं, स्वागतगानं, प्रबन्धसमितिसचिवः वार्षिकविवरणं पठति, छात्राणां भाषणानि, प्रतियोगिताः, नाटकप्रदर्शनं च भवति अन्ते अध्यक्षमहोदयस्य भाषणं तदनन्तरम् आचार्यः सर्वेभ्यो धन्यवादं ददाति, तत्पश्चात् पुरस्कार वितरणं मिष्ठान्नवितरणञ्च भवति। पर्यन्ते प्रधानाचार्यः श्रवणसुखदां सुमधुरां श्रमहरीं च अवकाशस्य घोषणां कृत्वा सभां विसर्जयति। एवम्प्रकारेण प्रतिवर्षम् अस्माकं विद्यालयः स्वकीयानि कार्याणि निर्वहन् अभ्युदयशिखरमारूढो विराजते। अत एवात्र विराजते ग्रन्थकृतो मङ्गलात्मिका सूक्तिरियम्—

शिक्षादानप्रभावेण पूज्यो मान्यो विपश्चिताम्।
वर्धतामेष भूलोके विद्याया आलयः सदा॥

●

## क्रीडाया महत्वम्

कस्याऽपि विषयस्य महत्वप्रतिपादनात् पूर्वं तस्य का उपयोगिता भवति एतस्य प्रदर्शनम् मन्मते तदपेक्षया अधिकमावश्यकम्। क्रीडा-कर्मणि लब्धपाटवानां शरीरम् अपूर्वं स्फूर्तिमयं भवति। येन ते तया स्फूर्तिमत्तया विलक्षणया शक्त्या च सर्वा आपदो निस्तरन्ति, एषा सर्वं-प्रथमा उपयोगिता। क्रीडायाः साहचर्य्येण ते किं किं न साधयन्ति इति अपरा उपयोगिता। अस्तु तावत् कस्मै अपि क्रीडानुरञ्जितचेतसे यत् क्रीडायाः क्रीडानां वा महत्वं तथाविधमेवाऽस्ति यथा नृपाय स्वकीय-मुकुटस्य महत्वं भवति। चक्रवर्ती यत्सुखं राज्यशासने लभते तदेव सुखं क्रीडार्थी क्रीडायाम्। बाल्यावस्था प्रथमं क्रीडनाय पश्चाद् अन्यकार्याय भवति, बालका अपि मातापित्रोः, भ्रातृभगिन्योः, मित्रबान्धवानां कृते क्रीडनकरूपा एव भवन्ति सुविदितमेव सर्वेषाम्।

व्यायामः सर्वेषां सर्वाङ्गानि पोषयति किन्तु सर्वे तत्कर्तुं नेच्छन्ति, आरभ्य च सम्यङ् निर्वाहं न कुर्वन्ति एतादृग् व्यतिक्रमेण लाभस्या-पेक्षया हानिरेव जायते। केवलं वयस्का एव तं नियमतः कर्तुं पार-यन्ति, अतः बाल्यावस्थायाः सर्वोत्तमा व्यायामाः पादकन्दुकक्रीडा-यष्टिकन्दुकक्रीडाप्रभृतयः अनेकाः सन्ति यत्र बालकाः प्रेरणां विनाऽपि स्वकीयेन औत्सुक्येन प्रवृत्ता भवन्ति ततः क्षुत्पिपासादिकं विस्मृत्याऽपि निरन्तरमनुरज्यन्ते। अनया प्रवृत्त्या तेषां मानसिकः शारीरिकः च विकासः स्वयमेव भवति। समीचीनया क्रीडया तेषां व्यायामस्याऽपि पूर्तिः हेलया एव भवति। यदि बालकाः क्रीडया आत्मविकासं प्रति जागरूका न भवेयुर्स्तर्हि ते राष्ट्राय भारस्वरूपाः सम्भविष्यन्ति। क्रीडया देहे यल्लाघवम् आयाति तदन्येन प्रयत्नेन कथमपि नैव शक्यते। इदमेव लाघवं स्वास्थ्यसम्पादने हेतुतां भजते। क्रीडार्थिनः स्मयमाना मुखाकृतिः, तेजोमयं नेत्रयुगलं, भ्राजमानं भाल-पट्टं, सुगठितं शरीरं, स्वाभाविकेन रक्तसञ्चरणेन सत्स्वास्थ्यं च जनानां चेतः आनन्दयति। अतः यः क्रीडातो विद्वेषं करोति स आत्महन्ता, नास्तिकः, अधार्मिकश्च अस्ति इति वयम् अनुभवामः।

क्रीडया बालानां मनः दुराचारविमुखं भूत्वा सदाचारपथे प्रवृत्ति

लभते। क्रीडार्थिनां मानसं दुराचारभावा नोपधावन्ति। यतः अध्ययनस्य समये ते तत्र प्रवृत्ताः भवन्ति, प्रातः सायं नित्यक्रियासु; शेषे समये क्रीडन्ति ततः श्रान्ताः सन्तः रात्रौ सुखेन स्वपन्ति। इत्थं चतुर्विंशतिहोरात्मकं कालं ते शौचादिकर्मणि भोजने पठने क्रीडने शयने एव व्यतीतं कुर्वन्ति। क्व तेषामवसरो दुराचरणस्य। अतः क्रीडार्थी चरित्रवान् भवति इति जनाः कथयन्ति तत्र विश्वसन्ति च। तस्मिन् अपूर्वा सहनःशक्तिः, नीतिप्रियता, सङ्घटनशक्तिः, परोपकारिता, दयालुता, कष्टसहिष्णुताप्रभृतयः लोकोत्तराः गुणाः स्वभावत एव प्रादुर्भवन्ति; इत्थं सः सद्गुणगणमण्डितः क्रीडाकुशलः उत्तमो देशसेवकः जननेता च भवति।

क्रीडाभिः मानवस्य हृदि अपूर्वः साहसः वीरतायाः भावश्च उदेति। यदा उभयपक्षीयाः क्रीडार्थिनः परपक्षं जेतुं प्रयतन्ते तदा दर्शनार्थिनः अपि अपूर्वोल्लासमयेन भावेन करतलध्वनिभिः गमनमपि गुञ्जायमानं विदधति। येन क्रीडकाः अपि द्विगुणेनोत्साहेन तत्र प्रवर्तन्ते। तदा कोऽपि विचलितः स्यात् उत्पतेत् निपतेद् वा तदनु ते सर्वे सम्भूय तस्य साहाय्यमपि प्राथमिकचिकित्सया सद्यः कुर्वन्ति। इयमपरा विशेषता तेषु दृष्टिपथं याति यद् विजेतृपक्षीयाः कदापि पराजितपक्षीयान् नावमन्यन्ते न च उपहसन्ति एव, केवलं ते विजयोल्लासेन स्वात्मनि उत्साहानुभवं कुर्वन्ति।

एवम्प्रकारेण निरन्तरं ये विजयिनो भवन्ति ते देशान्तरेषु च आहूयन्ते, तत्र ते धनं यशः च अर्जयन्ति। तेषु मित्राणि शत्रवश्च सममेव स्निह्यन्ति। अतएव लेखकस्येयं सूक्तिः पुरस्क्रियते—

स्वास्थ्यलाभसमृद्ध्यर्थं मनसस्तोषणाय च।
कुर्वन्तु वालकाः सर्वे क्रीडां खेलाञ्च कूर्दनम्॥

●

## मेलापकस्य वर्णनम्

यत्र निमित्तविशेषेण जनसमूहः सम्मिलितो भवति स एव मेलापकइति कथ्यते। अस्माकं भारतवर्षः धर्मप्रधानः देशः। अत एव अत्र ऋतुदेश-काल-देवता-महापुरुषजन्म-मृत्यु-सम्वन्धिनः वहुविधा मेलापकाः निश्चिततिथिषु भवन्ति। अत्र काश्यां प्रथमो मेलापकः रथयात्रानामकः,

यत्र भक्तैः भगवतो जगन्नाथस्य रथः स्वयम् उह्यते ।  द्वितीयः कालियनागवधरूपः 'नागनथैय्या' इति । तृतीयः श्रावणमासे 'दुर्गाजीका मेला' इति । चतुर्थः शारदीय-नवरात्रस्यैकादश्यां रामभरतयोः सम्मेलनरूपो 'भरतमिलाप' इति । एवंविधा अन्ये च बहवः धार्मिकाः साम्प्रदायिकाश्च मेलापकाः समये समये भवन्ति । तेषु दूरदूरतरेभ्यः स्थानेभ्यः पुरुषाः समागत्य समवेता भवन्ति । एतेष्ववसरेषु विद्यालयेषु कार्यालयेषु आपणेषु च अधिकारिभिः अवकाशाः प्रदीयन्ते ।

एकदा यदा अहं प्रथम-प्रथमं काशीम् आगतवान् आसम्, तदा नवरात्रस्य अवकाशानन्तरं मया श्रुतं यत् दशम्याः अपरस्मिन् दिने भरतमिलापस्याऽवकाशो भविता, तदाकर्ण्य मया सखायः पृष्टाः, किं भो ! अयं कीदृगवकाशः ? तद्दिने किं भवति कथं सर्वत्र अवकाशस्य घोषणा जाता । तदा तैः कथितं द्रक्ष्यसि आगमिनि दिवसे भरतमिलापस्य महोत्सवम्, महत्या उत्कण्ठया मया तद्दिनमासादितम् । मित्रैःसह गृहान्निर्गत्य मया कथितं मित्र ! तत्र गमने कथं विलम्ब्यते । स कथितवान्–तत्र गत्वा भगवतो रामचन्द्रस्य चिरकालत्सङ्गमोत्कण्ठितस्य भरतस्य दर्शनं दुष्करं भवति, यतो हि तत्र महाञ्जनसम्मर्दः सञ्जायते । शक्तिसम्पन्ना युवानोऽपि गोधूमचूर्णवच्चूर्णीभवन्ति का च अस्माकं तत्र गतिः अतो वयं सन्निकटस्थस्य कस्यचिन्महापुरुषस्य प्रासादोपरि आरुह्य अवलोकयामः । पुनरपि स उवाच–यदा रामनगरस्य काशीनरेशमहाभागा गजारूढा आगच्छन्ति तदा तैः सह तेषां परिकराः सैनिकाः अपि आयान्ति, तदानीं तत्र प्रवेष्टुं नियमतः कोऽपि न पारयति, तदा जनतया सोल्लासकृतां 'हर हर महादेव' इति गगनभेदिनीं शब्दपरम्परामाकर्ण्य मेलापकस्थाः द्विगुणतरेणोत्साहेन पूरिताः भवन्ति ।

भ्रातः ! पश्य तद् दृश्यम् आगताः श्रीमन्तः काशीनरेशमहाभागाः, तेषां पुरतः भगवान् श्रीरामचन्द्रः चतुर्दशवर्षाणि वनमुषित्वा अद्य सीतालक्ष्मणहनुमदादिभिः सहितः राजोचितवेशैरलङ्कृतश्छत्रधरः चामरैर्वीज्यमानः तेजोमण्डलमण्डितः कामप्यपूर्वां शोभां दधानो गजारूढ आयाति, इतः भरतोऽपि अमन्दानन्दानन्दितः प्रसारितबाहुः स्वासनस्थः विनतकन्धरः तदागमनं प्रतीक्षमाणस्तिष्ठति । आयातः सर्वजननयनाभिरामः श्रीरामः । तदनु भरतभुवो भूषायमाणो भक्तो

भरतः द्वित्राणि पदानि अग्रत आगत्य स्नेहनिर्भरं समस्य पादयोः पतति, तथा चरणानतं भरतं रामः स्वाङ्गेष्वाश्लिष्य सुचिरमालिङ्गति। आत्मानं धन्यम्मन्यमानो भरतः निक्षेपरूपेण सुरक्षितं तदयोध्यायाः समग्रं राज्यं समुदं सादरं श्रीरामचन्द्राय समर्पयति। एतस्मिन्नवसरे रामभरतयोः काशीनरेशस्य च उपरि जनता सामोदं पुष्पवृष्टिं करोति यया भूभागोऽपि पुष्पमयमेवावलोक्यते।

विस्फारितनेत्रयुगलेन निर्निमेषपक्ष्मणा मयाऽपि तद् दृश्यजातमालोकितम्। तदा सः अपृच्छत्–मित्र! दृष्टं लोकोत्तर दृश्यम्। मयाऽपि तद् बहुप्रशंसितम्। महोच्चप्रासादपृष्ठस्थितेन मया राजमार्गेऽपि पदे पदे प्रस्खलन्तस्ते ते पुरुषाः तस्मिञ्जनसम्मर्दे कृमिकीटाकारा इव लघुतराः परिलक्षिताः। तत्र मध्येमार्गं विविधमिष्ठान्नचिपिटक-क्रीडनक-भाण्डवस्त्रादिविक्रेतॄणाम् अहमहमिकापूर्णं कोलाहलं, दर्शकाणां कर्णकुहराणि विदारयतिस्म। तदानीं शासनादेशानुसारं सुदूरं यावत् यानानां गमनागमनमवरुद्धमासीत्।

इत्थं नगरस्य तद्दिवसीयाम् अपूर्वां शोभां दर्शं दर्शं, वाद्यादीनि श्रावं श्रावं, जनसम्मर्दं स्मारं स्मारं, भरतस्यालौकिकं प्रेम ध्यायं ध्यायं, व्यवस्थापकानां वैद्युतीयध्वनिवाहकयन्त्रस्य इतो न गम्यताम्, आगन्तारः अनेन मार्गेण आयान्तु, गन्तारः तेन मार्गेण गच्छन्तु, सोमारूयादवस्य पञ्चवर्षीयो बालकः अत्र सुरक्षितः पितरौ प्रतीक्षते, इत्याद्युद्घोषणाः आकर्ण्याऽऽकर्ण्य उद्विग्नेन, चिरात् परिश्रान्तेन च मया विचारितं यदधुना गृहं प्रत्यावर्तितव्यम् किन्तु महान् जनसम्मर्दः, तं विभेद्य कथं गृहं गन्तुं शक्नुयाम्।

यावत् किञ्चिदध्वानमतिक्रम्य गृहाभिमुखोऽभवम्, तत्र ऐन्द्रजालिकैः वितानमेकं विस्तीर्णम् आसीत्। तस्य द्वारदेशे लिखितं वर्ततेस्म, यदत्र मृता खण्डशः कृता च कन्या पुनर्जीविता भवति। तद्दृष्ट्वा मन्मित्रेणोक्तम् भ्रातः! नैतादृगवसरः प्रत्यहम् आयाति, चल अवलोकयावः। दश दश पणकान् प्रदाय आवां तद्दर्शनाय गतौ। आश्चर्यकरं तद्दृश्यं विलोक्य न जाने क्व श्रान्तता क्व च बुभुक्षा गता। ततो निर्गत्य स्वं स्वं गृहम्प्रत्याऽऽगतौ आवाम्।

मेलापकदर्शनेन बहुविधोऽनुभवो जायते। विविधानि वस्तूनि तत्र-दृष्टिपथमायान्ति। व्यवहारिकीनिपुणताऽपि प्राप्यते, मित्रैः सह मेलनम्भवति मनोरञ्जनस्य तु का चर्चा तदर्थन्तु आयोज्यत एव महापुरुषैः मेलापकः। अतएवोक्तं निबन्धकृता—

मेलापकस्य माहात्म्यं सरागा लोचनैर्युताः।
जानन्ति धनिकाश्चैव दरिद्रा न कथञ्चन॥



## विज्ञानस्य चमत्काराः, धूमयानयात्रा, विमानवर्णनम्, चलच्चित्रम्

साम्प्रतिके युगे विज्ञानस्य महन्महत्वं प्रतीयते। अद्य विज्ञानं प्राकृतिकानि वस्तून्यपि आत्मसात् कर्तुं प्रयतमानमस्ति। यत्र दृष्टिः प्रदीयते तत्र विज्ञानस्यैव चर्चा आकर्ण्यते। अद्य विज्ञानमन्तरेण शयनं, भक्षणं, भ्रमणं, नर्तनं, सम्भाषणं, प्रेक्षणं, श्रवणं, श्वसनं, गमनं, सर्वमेव अस्वाभाविकमिव प्रतीयते। साम्प्रतं न कोऽपि देशः एतादृशः अस्ति यत्र विज्ञानवेत्तारः यस्मिन् कस्मिन्नपि नवीनविषयस्य गवेषणायां दत्तचित्ताः न स्युः। अस्मिन् युगे विज्ञानेन अभिनवा क्रान्तिरुत्पादिता। अधुना विज्ञानस्य प्रभावेण असम्भवोऽपि सम्भवो जातः। यात्रायां, चिकित्सायां, सम्भाषणव्यवहारे च आश्चर्यजनकानि आविष्काराणि पुरस्कृतानि वैज्ञानिकैः। विज्ञानं प्रतिदिनम् प्रतिक्षणं वा उन्नतिमार्गाश्रितं वर्तते।

यात्रायां यत्सौकर्यं तेन सम्पादितं तदाशातीतमेव, को जानाति स्म मासमात्रगम्येऽध्वनि होरात्रयं पर्याप्तम्। तत्र साधनस्वरूपेण रेलशकटो, मोटरयानम्, पोतयानम्, विमानम्, राकेटप्रभृतीनि सर्वाश्चर्यकराणि यानानि सन्ति येषां गतिरपि सुनिश्चिताऽस्ति। गेहस्थित एव मानवः गणनया निश्चयं करोति, एतस्मिन् समये यद्यहं गृहाद् गमिष्यामि तदनु इयता कालेन तत्र नूनं प्राप्स्यामि, इति।

वयं पुष्पकादिविमानानां वार्ताः पुराणेषु साश्चर्यम् अपठाम, तानि विमानानि देवेभ्य एव सुलभानि आसन्। किं वा, एकमेव विमानं कुबेरस्य

आसीत् तदाच्छिद्य रावणः स्ववशीचकार, तदेव विभीषणः रामाय ददौ। अद्य तु यः कोऽपि धनवान् कामयते स विमानवरमारूढो जायते। तदारुह्य-चन्द्रलोकस्य आगामिनि समये अन्यत्रापि द्युलोके यात्रां कर्तुं समर्थो भविष्यति। इतः पूर्वं कोऽपि कल्पनामपि न करोतिस्म भूलोकादपरत्राऽपि जीवितपुरुषस्य गमने शक्तिरस्ति भविष्यति वा।

पुरा गयातीर्थयात्रार्थं पदातयो जना इति निश्चित्य एव गृहान्निर्गच्छन्तिस्म यदस्माकं परिजनैः सह पुनर्मेलनं नैव भविष्यतीति। अतस्ते सर्वान् बन्धुबान्धवान् आलिङ्ग्य प्रणम्य ऋणमुक्ता भूत्वा सामूहिकरूपेण यात्रां विदधतिस्म। यदि दैवयोगाद् बहुवर्षानन्तरं परावृत्य गृहमायान्तिस्म तदा ते देववत् समाजे पूज्यन्तेस्म। अद्य यानानां सौविध्येन नास्ति कोऽपि विचिकित्सा परावर्तने। अद्य गतास्ते निश्चितसमये नूनं परावर्त्स्यन्तीति द्रढीयान् विश्वासः।

एवमेव समाचारपत्र-प्रेषणक्षेत्रेऽपि महत् परिवर्तनं जातम्। पुरा कपोत-हंसादिपक्षीणां माध्यमेन अथवा जङ्घालपुरुषद्वारा संवादप्रेषणेन अन्योन्यसमाचारैः बहुकालानन्तरम् अभिज्ञा भवन्तिस्म जनाः किन्तु अद्य पत्रैः, तारपत्रैः, दूरभाषणयन्त्रसहकारेण (टेलीफोन), वायरलेसयन्त्रप्रयोगेण समाचाराणां सौकर्यं जातम्। टेलीविजननामकं यन्त्रन्तु सर्वातिशायि वर्तते, अन्यद्यन्त्रमाध्यमेन केवलं समाचाराणि एव विदितानि कर्तुं शक्यन्ते किन्तु एतेन वार्ताकरस्य मुखमपि अवलोकयितुं शक्यते। यथा एकत्र उपस्थिता वार्तां कुर्वन्ति तद्वदेव टेलीविजनयन्त्रमपि सौख्याय मनसस्तोषाय च कल्पते।

नभोवाणीयन्त्रं ( रेडियो ) निभालयन्तु। 'शब्दगुणकमाकाशम्' यन्नैय्यायिकैरहर्निशं चिराद् गरटयते, तस्य प्रायोगिकरूपेण साक्षात्कारः स्वप्रयोगबलेन वैज्ञानिकैः कृतो विलसति। मुद्रणक्षेत्रेऽपि आमूलचूलं परिवर्तनं सम्पादितं वैज्ञानिकैः। पुरा गुरवः यद् उपदिशन्तिस्म छात्रास्तत् कण्ठस्थीकुर्वन्ति स्म। तदनु ब्राह्मीलिपेः जन्म अभवत् क्रमशः लेखनस्याऽऽविष्कारः समजनि। तत्पश्चात् प्रकाशनाय सीसकाक्षराणां प्रयोगः सञ्जातः तदनन्तरमेतादृग् यन्त्रनिर्माणभवत् येन प्रकाशकाः स्वल्पेनैव कालेन पुस्तकानां प्रकाशने समर्था अभवन्। साम्प्रतं प्रकाशनक्षेत्रे वैज्ञानिकेन

अभिनवेनं टेलीप्रिण्टरनामकयन्त्रस्याविष्कारेण विस्मयकरं परिवर्तनं कृतम्। अत्र सीसकाक्षरसंयोजकानाम् (कम्पोजीटर) अपि नाऽस्ति आवश्यकता।

विज्ञानेन चित्रक्षेत्रेऽपि विचित्रता चित्रिता। यच्चित्रं कुशलश्चित्रकारः दिनद्वयेन त्रयेण वा निर्मातुं समर्थः, तत् 'केमराऽऽख्ययन्त्रं' क्षणेनैव निर्माति। स्वल्पाकारमपि बृहदाकारे परिवर्तयितुं पारयति। पूर्वन्तु सामान्यं शुक्लकृष्णवर्णमयं चित्रं निर्मीयतेस्म। इदानीन्तु विविधरङ्ग-संयुतानि अपि चित्राणि निर्मीयन्ते यन्त्राणां साहाय्येन।

शल्य-शालाक्यचिकित्साक्षेत्रे 'ऐक्स-रे' प्रभृतिभिः नवनवैर्यन्त्रैः आश्चर्य-जनिका क्रान्तिरकारि। एतेषां साहाय्येन निदानादिषु सौविध्यं तथा चिकित्सायामपि अनेके लाभा लम्भिताः चिकित्सकैः। आभ्यन्तरि-काङ्गाणां स्पष्टदर्शकेण 'ऐक्स-रे' यन्त्रेण कुत्र रोगाक्रमणं व्रणं भग्नं वा जातं तत् स्पष्टं दृश्यते।

मनोविनोदनक्षेत्रेऽपि विज्ञानस्य प्रभावोऽविस्मरणीयः। चलच्चित्रपटे परस्परं सम्भाषणं कुर्वन्तः, नृत्यन्तः, कूर्दन्तः, गायन्तः, युध्यन्तः, नायकाः, शरणागतान् रक्षन्तः शूराः, प्रवहन्त्यो, नद्यः, कल्लोलवन्तः सागराः, द्योतमाना विद्युतः, वर्षन्तः गर्जन्तश्च मेघाः, विकसितानि उद्यानानि, नगराणां भग्नावशेषाः, काननानां कर्तनम् किं किं वर्णयामः यद्-यद् मानवः विचारयति तत्सर्वं चित्रपटे द्रष्टुं शक्यते वैज्ञानिकानां परिश्रमेण। ऐतिहासिकविषयाणि भौगोलिकी चर्चा च, यथा कुत्र के के आविष्काराः कृता वैज्ञानिकैः कथं तेषामारम्भः। इत्यादिकं समस्तं वस्तुजातं द्रष्टुं दूरस्था अपि प्रभवन्ति चलच्चित्रपटसहकारेण।

अद्य विद्युना संसारस्य स्वरूपमेव परिवर्तितम्। वैज्ञानिकोपकरण-सम्भारैः षड्ऋतूनां नैसर्गिकाः प्रभावा एव ह्रासतां गता दृश्यन्ते श्रीमताङ् गृहेषु। पश्यन्तु श्रीमन्तः—विद्युतः प्रभावाद् रात्रिर्दिवसायते, शीतम् उष्णायते, उष्णमपि शीतायते। विज्ञानेन यत्र देशस्य अभ्युदयाय प्रयतितं तत्रैव जगद्विध्वंसकसाधनान्यपि आविष्कृतानि। यादृग् अनेन लाभाः सम्भवाः, ततोऽप्यधिका हानिरपि। लाभमपेक्षमाणाः पुमांसः हानिविषये उपेक्षावृत्तिं भजन्ते। यथेदं विज्ञानमपूर्वां क्रान्तिं जनयितुं प्रवृत्तं

दृश्यते। यदि एतस्य कथञ्चिद् दुरुपयोगः क्रियेत तर्हि विनाशाय अपि सम्भविष्यति। इति विचारशीलसमाजस्य निर्णयः। एतत्सर्वमवलोक्य मच्चेतसि आयाति—

विज्ञा विज्ञानदृष्ट्या यद् यत् कुर्वन्ति नवं नवम्।
आश्चर्य-सुख-शान्त्यर्थं भविता तत् क्षयाय च॥

## कृषेः—महत्वम्

यद्यपि भगवता श्रीकृष्णेन गीतायां कृषिकर्म वैश्यानामेव निर्दिष्टम्। यथा—'कृषिगौरक्ष्यवाणिज्यवैश्यकर्म स्वभावजम्', तथाऽपि इदं कर्म सर्वेभ्यः श्रेष्ठम्। ब्राह्मणाय अपि द्यूतक्रीडानिषेधप्रसङ्गे निर्दिष्टमस्ति यत्—'अक्षैर्मा दीव्य कृषिमित् कृषस्व'। एतत् कृषिकर्म सर्वोत्तमं यदनेन चराचरस्य हितं भवति। सर्वेषु व्यवसायेषु कृषिः विशेषेण वर्तते। 'अन्नाद् भवन्ति भूतानि'। 'अन्ने सर्वं प्रतिष्ठितम्' 'कलौ अन्नगताः प्राणाः' इत्यादीनि सुभाषित-वचनानि अन्नस्य प्रशंसायाम् आकर्ण्यन्ते। तदन्नं कृषेरधीनम्। पशवः, पक्षिणः, जलेचराः, स्थलेचराः, ब्रह्मचारिणः, वानप्रस्थाः सन्यासिनः सर्वे केवलं भक्षणपराः, केचन पत्रं घासादिकं चरन्ति अन्ये अन्नकणानि अपरे कन्दमूलानि शेषाः षड्रसव्यञ्जनानि तत्सर्वेभ्यः गृहस्थः कृषकः एव उत्पादयति अन्नादिकं ततः स्वकीयपरिवारस्य पूर्तये सङ्गृह्य शेषं स्वल्पेनैव मूल्येन विक्रीणाति परेषां हितकामनया, येन वेतनोपभोगिनः स्वपरिवारस्य भरणं पोषणञ्च कुर्वन्ति। यदि वयं कल्पनां कुर्याम—सर्वे वेतनोपभोगिनो याचकाः वा स्युः न कोऽपि कृषिकर्म कुर्यात् तर्हि किं रूप्यकजातैः कस्यापि बुभुक्षा-शान्तिः सम्भवेत्? अथवा यदि कृषकः आत्मम्भरः स्यात्, तदतिरिक्तः कः अन्यः एतादृक् साहसी वर्तते यः अन्नम्—उत्पाद्य परेभ्यो दद्यात् स्वल्पेनैव मूल्येन।

कृषकः सर्वश्रेष्ठः प्राणी भवति। सः आदिवसं परोपकाराय कृषि-कर्मणि व्यापृतो भूत्वा सर्वेषां प्राणपोषकम् अन्नजातम् उत्पादयति। सः उष्णस्य शीतस्य हिमस्य वर्षायाः अपि चिन्तां विहाय सर्वाणि कष्टानि सोढ्वाऽपि निरन्तरं तत्र संलग्नो दृश्यते। अनेन परोपकारस्तु भवत्येव

सहैव स्वास्थ्यलाभोऽपि जायते। ते वणिजः ये कार्पासस्फीतायामासन्दिकायामुपविश्य बहूपधानैः प्रावृता आदिवसम् एकासनेनोपविशन्ति तेषाम् अपेक्षया कृषकस्य स्वास्थ्यं सर्वथा समीचीनं भवति।

कृषिः स्वाधीनतमो व्यवसायः। अत्र न काऽपि पराधीनता नाऽपि बन्धनव्यसनिता च। सः स्वयमेव यथावसरं स्वकर्मणि प्रवृत्तो भवति कृषिं कर्षति, बीजं वपति, यथासमयं तां सिञ्चति, समये समये तस्याः सुरक्षायाः व्यवस्थां विदधाति अन्यत् किमपि तत्र घासादिकं समुत्पन्नं चेत् तन्निवारयति। तदुत्पन्नैः अन्नादिभिः पारिवारिकान् पालयति, घासादिभिः पशून् पोषयति। सम्पन्नः कृषकः लवणादतिरिक्तं सर्वं वस्तु कृषेः साहाय्यात् उत्पादयति। यथा—गोधूमं, चणकं, शालिः, मसूरं, माषं, मुद्गं, विविधानि शाकानि, शतपुष्पा, धान्यकं, जीरकं कार्पासञ्च ( येन वस्त्राणि निष्पाद्यन्ते )। गोमहिष्यादिपालनेन दुग्धं दधि घृतं तक्रं च प्राप्यते, मलमूत्रादिभिः कृषिः उर्वरा भवति। एतेषां चर्मणा उपानत् निर्मीयते। तेभ्य एव बलीयांसो बलीवर्दाः अपि लभ्यन्ते, येषां साहाय्येन कृषकः कृषिं कर्षति। उद्यानरक्षणेन आम्र, कदली, नागरङ्ग प्रभृति फलसम्पदाऽपि स परिपूरितो भवति। अहो धन्यतमं परोपकारमयं स्वास्थ्यसम्पत्सम्पन्नञ्च कृषकस्य जीवनम्। कृषकस्य परिश्रमस्य फलमेव अस्ति यत् सुजला सुफला सस्यश्यामला मलयजशीतला च वसुन्धरा सर्वेषां मनांसि आनन्दनिर्भराणि करोति।

ग्राम्यवातावरणे कदाचित् सः सरोजराजिराजितं सरोवरमवगाहते, कदाचिच्च वटवृक्षस्य छायामाश्रयति, वसन्ते कोकिलस्य कलमधुरां वाचमाकर्णयति, ग्रीष्मकाले शीतलस्य शीतकाले उष्णस्य कूपोदकस्य सुखं लभते। वर्षासु जलदागमे मुग्धमयूराणां मनोहरनृत्यानि दृष्टिपथमवतारयति, शरदि गगनं द्विधा विभजन्त्याः सारसपङ्क्तेः, परोपकारिणो यशसः समूह इव मेघमालायाः, जरतः शिरोरुहरुचिं दधानां कुशकाशकुसुमानाञ्च अनुपमां शोभामवलोकयितुं स एव दिष्ट्या वर्धते। हेमन्ते शिशिरे च अग्निभर्जितहिङ्गुमरिचलवणतैलाक्तवृन्ताकानां ( बैंगन का भर्ता ), घृतपक्वणमरिचमिश्रितशिम्बीचिपिटकानां ( मटर-च्यूड़ा ), सद्यः सम्पादितेक्षुरसस्य, उपलाग्निपाचितसूप-करपट्टिकयोः ( दाल-बाटी ) च परमानन्दप्रदमास्वादं कृषक एवाऽऽस्वदते। कदाचित् पीतपुष्पसुषमासमृद्धां

सर्षपकृषिं दर्शं दर्शम् अमन्दानन्दमेदुरो बोभवीति। प्रातः सायं सूर्योदयास्तमययोः निसर्गतः प्राप्तां कामप्यपूर्वां शोभां स एव अक्षिलक्ष्योकरोति। निशीथे चन्द्रचन्द्रिकायाः दर्शनस्याऽविकलं सुखं स एव आप्नोति। सायम्प्रातःकालिकपक्षीणां कलरवध्वनिं स एव काममाकर्णयति। किमेतादृक् सुखं कस्मैचन नगरवासिने सुलभं स्यात्।

मानवजीवनस्य सर्वाः आवश्यकताः कृषिमाध्यमेन एव पूर्तिमधिगच्छन्तोति पूर्वं वर्णितमेव। अत इदं निश्चीयते यत्सर्वेभ्यो व्यवसायेभ्यः कृषिव्यवसायः स्वातन्त्र्यदृष्ट्या स्वास्थ्यदृष्ट्या च महत्त्वपूर्णमस्ति। ते सर्वे कृषकाः धन्याः, धन्याश्च तेषां पूर्वजाः ये परोपकारकर्मकुशलान् कर्मकरान् उत्पाद्य दिवं गताः। अतएव एतत्सुभाषितं ख्यातिमगमत्, यत्—'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या' इति। अपरमपि लेखकेन सूक्तम्—

चलाः सम्पत्तयः सर्वा जीवनञ्च चलं स्मृतम्।
कृषिरेकाऽचला प्रोक्ता तस्मात् तां सर्वदा भज॥



## समाचार-पत्राणि

मानवः प्रगतिशीलः प्राणी वर्तते। सः सर्वदा स्वस्य स्वकीयसमाजस्य देशस्य राष्ट्रस्य च यथा उन्नतिः स्यात् तथा यतते। एतस्य कृते इदं परमावश्यक भवति यत् सः कुत्र किं भवति, कः किं करोति किं कर्तुम् अभिलषति च, के देशाः कस्मिन् कर्मणि. व्यवसाये, ज्ञाने, विज्ञाने, च विशेषज्ञाः सन्ति इति प्रतिपदं स जिज्ञासते। यथा सः परेषां विचाराणां जिज्ञासुः भवति, तथैव स्वकीयविचारजातमपि परेभ्यो दातुमभिलषति, एतस्य सहयोगाय समाचारपत्राणां प्रभवति दैनन्दिनी आवश्यकता। इति निश्चित्य षोडश्यां शताब्दयाम् इटलीप्रदेशस्य वेनिसप्रान्तेऽभवत् समाचारपत्रस्य निर्माणचर्चा। वेनिसप्रान्तस्याऽनुकरणम् अन्यैरपि देशैः कृतम्। तदनु सप्तदश्यां शताब्दयाम् इङ्गलेण्डदेशे समाचारपत्रस्य सर्वप्रथमं जन्म अभवत्। आङ्ग्लशासकैः सर्वप्रथमं देशेऽस्मिन् 'इण्डिया गजट' नामकमाङ्ग्लभाषामयं पत्रं प्रवर्तितम्। तदनु ईसाईधर्मपुरोहितैः पादरीतिनामधेयैः 'समाचारदर्पणं' नाम हिन्दीपत्रं मुद्रितम्। तदनन्तरं राजाराममोहनरायमहोदयेन 'कौमुदी' नामकं पत्रं, ततः स्वाभिमानधुरन्धरेण

श्रीमता ईश्वरचन्द्रविद्यासागरेण 'प्रभाकर' पत्रस्य सम्पादनं प्रकाशनञ्च कृतम्। १८३५ ईशवीयवत्सरे लार्ड आकलैण्डमहोदयेन मुद्रणस्य स्वतन्त्रता प्रदत्ता। प्रकाशनक्षेत्रे एषा स्वतन्त्रता सर्वथा अभिनवा आसीत्। यया शतशः पत्रप्रकाशकाः सहसा एव प्रादुर्भूताः। तदा प्रभृति सर्वासु भाषासु बहुशः पत्राणि सम्प्रति विक्रेतॄणां हस्तेष्ववलोक्यन्ते।

अयमेकः शुद्धः व्यवसायः येन बहूनां जीविका प्रचलति। तत्र संवादसम्पादकः, संवाददातारः शीशकाक्षरसंयोजकाः (कम्पोजीटर), मुद्रणयन्त्रसञ्चालकाः (मशीनमैन) अनेके कार्यकर्तारः च आजीविकां लभन्ते। पुरुषार्थशिथिलानि दैवविहीनानि कानिचित् पत्राणि प्रायः अस्तमपि यान्ति। किन्तु यावन्ति अस्तं यान्ति ततोऽपि अधिकानां जन्म भवति, अतस्ते कर्मकराः अन्यत्रोपयुज्यन्ते। समाचारपत्रसञ्चालकानां सर्वकारसम्मानित एकः सङ्घो भवति। तस्य आज्ञां सर्वे पत्रप्रकाशकाः स्वीकुर्वन्ति। ताम् आज्ञामनुसृत्य एव ते प्रचलन्ति। स एव सङ्घः तेषां नियामकः कथ्यते।

अनेके लाभाः सन्ति समाचारपत्राणाम्। इमानि देशविदेशानां राजनैतिक-धार्मिक-सामाजिक-शैक्षणिक-व्यापारिकसमाचारान् प्रकाश्य चतुर्षु दिक्षु प्रसारयन्ति। विश्वस्मिन् यत्र-यत्र यद्-यद् भवति तस्य सर्वस्य ज्ञानं वयं गृहे स्थिता एव कर्तुं पारयामः समाचारपत्रणां साहाय्येन। कः देशः केन कारणेन कस्यां स्थितौ वर्तते कानि मित्रराष्ट्राणि कानि च शत्रुराष्ट्राणि इत्यादिकाः सर्वाः सूचनाः लभामहे वयम्। यदि सदाचारपत्राणि न स्युः तर्हि वयं कूपमण्डूकवत् एकस्मिन् गर्ते पतिता पार्श्ववर्तिनं देशमपि न जानामः। एतानि पत्राणि अस्मान् पशुभरातलाद् उद्घृत्य सर्वज्ञमानवमीमानमारोपयन्ति। धनिकाः समाचारपत्राणां दैनिकाः वार्षिकाः वा ग्राहका भवन्ति निर्धनाः वाचनालयेषु गत्वा तानि पठन्ति। अनेन प्रकारेण सर्वेषां जिज्ञासापूर्तिः समाचारपत्रैः सञ्जायते। व्यापारस्य अभिवृद्ध्यर्थमपि एतेषामुपयोगः क्रियते व्यापारकर्मकुशलैः। यथा एतद् वस्तु अत्र इयता मूल्येन मिलति तस्य एषा विशेषताऽस्ति। अन्ये तद् वस्तु अस्माकमपेक्षया अधिकेन मूल्येन ददति, इत्यादीनि वचनानि पत्र-साहाय्याद् विस्तारितानि पाठकाना पुरः पतितानि तान् सहसा आकर्षयन्ति तेषां कोणमपि। इत्थं सर्वविधवस्तुविक्रेतारः पत्रेषु स्थूलाक्षरेषु

विज्ञापनानि ददति। विज्ञापनस्य प्रकाशनेन पत्राणां लाभः, तत्र प्रकाशितेन विज्ञापनेन व्यापारिणां प्रचारः प्रसारस्तथा पूर्वापेक्षयाऽधिकतरो लाभः च सम्भवति।

समाचारपत्राणि अधिकारिणां जनतायाश्च मध्ये सामीप्यस्थापनाय भवन्ति। एभिः जटिलाः समस्याः अपि समाधीयन्ते। स्वाभिमतप्रकाशनस्य, कस्याश्चिद् आलोचनायाश्च इमानि साधनतां यान्ति। समये समये राष्ट्रियचेतनायाः जागरणस्याऽपि इमानि कार्यं कुर्वन्ति। आङ्ग्लशासकानां विरोधप्रचाराय वाराणसीतः 'रणभेरी' पत्रस्य प्रचुरः प्रचारः समभवत्। देशप्रेम्णः सूचना समाचारपत्राणां माध्यमेन यथावसरं प्रदीयते देशसेवकोत्तमैः। यत्र इमानि पत्राणि लाभाय कल्पन्ते तत्र सम्पादकानां सञ्चालकानां वा अर्थलोलुपतया मिथ्याप्रचारेण च कदाचिद् विद्वेषस्फुलिङ्गानपि प्रसारयन्ति, यैः बहवः उपद्रवाः क्षणेन उत्पद्यन्ते। सम्प्रति टेलीप्रिण्टरयन्त्रसाहाय्येन समाचाराणां प्रचारे शीघ्रता लम्भिता वैज्ञानिकैः। एतद् यन्त्रम् एकत्र कथितं समाचारं समकालमेव सर्वत्रोट्टङ्कयति, यत्र-यत्र तद्यन्त्रं वर्तते। इत्थं समाचारपत्रेषु सन्ति गुण-दोषाः किन्तु दोषाणामपेक्षया गुणा एव अधिकांशतया तत्र विद्योतन्ते। अद्य एतानि वृत्तपत्राणि एव जनतायाः, सभ्यतायाः, संस्कृतेः उन्नतेः, ज्ञानभण्डारस्य साधनत्वेन प्रसृतानि सन्ति। एतान्येव अन्ताराष्ट्रियसङ्घटनस्य बन्धनशृङ्खलात्वेन विराजन्ते। अतएव साधूक्तं समाचारपत्रविषये लेखकेन—

विज्ञापनं कलां ज्ञानं कौशलं सर्वदेशजम्।
वृत्तञ्च वृत्तपत्रेषु प्राप्यतेऽनुदिनं नवम्॥



## परिवारनियोजनम्

भगवान् सृष्टेरारम्भे यद् अकामयत तदेतत्—'एकोऽहं बहुस्याम्' इति। तदनु तेन सृष्टेरारम्भः कृतः। प्रागयोनिजा सृष्टिरुदभूत्। तदनन्तरं महामानवेन मनुना मैथुनीसृष्टिरारब्धा। धर्मशास्त्रेषु पुराणेषु चिकित्साग्रन्थेषु च निर्दिष्टमेतत् पञ्चविंशतिवर्षवयस्कः पुरुषः षोडशवर्षवयस्कायाः कन्यायाः पाणिं गृह्णीयात्। तदनु ऋतुपर्वसु सः स्त्रियमभि-

गच्छेदिति। तत्राऽपि 'षोडशर्तुनिशाः स्त्रीणां तासु युग्मासु संविशेत्' पुत्रकामः, कन्याकामः अयुग्मासु इति शास्त्रवचनम्। इदमपि शास्त्रैः आज्ञप्तं यत् 'मरणं विन्दुपातेन जीवनं विन्दुधारणात्'। अर्थात् वीर्यस्य एकोऽपि विन्दुः प्रयाति चेत् तेन आयुष्यस्य हानिः भवति तस्यैव संरक्षणात् जीवनलाभः। अपरत्र श्रीकृष्णेन गीतायामुपदिष्टम्–'ये हि संस्पर्शजा भोगा दुःखयोनय एव ते'। अयमपि सुरतात्मको भोगः संस्पर्शज एव, यः क्षणिकसुखाय भवति पश्चाद् दुःखं जनयति।

गर्भाधानविषये यदाचार्यैः सङ्केतितं तदित्थम्—'मासं ब्रह्मचारी पुरुषः मासं ब्रह्मचारिणीं स्त्रियमुपेयात्'। इत्यादीनि वाक्यानि स्त्रीपुंसोः पन्थानं निर्भ्रान्तितमं कल्पयन्ति यत् ताभ्यां गृहस्थजीवने कथं वर्तितव्यमिति। एतस्य सर्वस्य अयमेव सारांशः यत् मासस्य त्रिशद्दिनेषु एकस्याम् एव रात्रौ सन्तति कामायमानौ स्त्रीपुरुषौ सहवासं कुर्याताम्। ततः सति गर्भाधाने सहवासं चिराय परित्यजेताम्। इत्थं व्यवहरन्तौ तौ सन्ततिसुखेन स्वास्थ्यसुखेन च सम्पन्नौ भविष्यतः। शास्त्रेषु सन्ततिसन्तानसम्पन्नस्य संस्तवः बहुत्र दृश्यते, किन्तु षष्टिसहस्रसुतसम्पत्तिसम्पन्नं सगरराजानं कदाचिदपि कोऽपि विस्मरिष्यति यः सदैव तैः सन्त्रस्त एव आसीत्। भगवतः श्रीकृष्णस्य खनागाभ्रचन्द्रतुंभूसङ्ख्यसूनवः ( १६१०८० ) समभवन्। किं कोऽपि तेषु कृष्ण इव प्रसिद्धः समजनि ?।

अतो वयमपरपक्षमाश्रयामः, यत्र विरलसन्ततिः प्रशंसिताऽस्ति—

वरमेको गुणीपुत्रो न च मूर्खशतान्यपि।
एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च ताराः सहस्रशः॥

एक एव पुत्रः गुणवान् चिरजीवी स्यात् तत्र सर्वेऽनुरक्ताः भवन्ति। सन्ततिः पुत्ररूपा कन्यारूपा वा भवति। कन्यायाः सम्बन्धे समाजः प्रायो मन्दादरो दृश्यते। तद्यथा—

पुत्रीति जाता महतीह चिन्ता कस्मै प्रदेयेति महान् वितर्कः।
दत्वा सुखं प्राप्स्यति वा न वेति कन्या पितृत्वं खलु नाम कष्टम्॥

इत्येतावन्तं शास्त्रीयं विवरणम्। इतः परं किमपि आधुनिकमपि पर्यालोचयामः।

प्रतिदिनं वर्धमानां जनसङ्ख्यामालोक्य केन्द्रीयसर्वकारेण एष प्रयासः प्रारब्धः यत् सर्वे जनाः स्वकीयस्य स्वसन्तत्याश्च शाश्वतिकसुखाय सन्ततिनिग्रहमनिवार्यरूपेण कुर्युः। यथा पूर्वमस्माभिश्चर्चितं यत् केवलं ऋतुकालाभिगमनाद् अन्यत्र ब्रह्मचर्यस्य पालनं हिताय सुखाय पुण्याय च कल्पते किन्तु व्यावहारिकदृष्ट्या एतत्सर्वं सम्प्रति असम्भवमिवावलोक्यते। सांसारिकक्रम एव विपरिवर्तितो लक्ष्यते। सर्वेषां विचारधारा पश्चिमाभिमुखी जाता। यद्यपि आङ्ग्लशासकाः इतः प्रतिनिवृत्ताः किन्तु भारतीयेषु तेषां विलासिता अद्याऽपि स्वकीयां सीमाम् उल्लङ्घयन्ती चक्षुषोरग्रे नरीनर्ति। चलच्चित्राणाम् एतादृक् प्रभावो नरनारीषु बालकबालिकासु दृश्यते, येन युवतयः पुरुषवद् युवानः स्त्रीवत् वेशभूषादिभिः अलङ्कृताः पुरःस्फुरन्ति। यद्गोप्यमपि तदपि प्रत्यक्षतः ते चित्रपटेषु सस्पृहं पश्यन्ति तथैव आचरन्त्यपि।

समाजस्य विषमामिमां दशां निरूप्य वैज्ञानिकैः कानिचिद् सन्ततिनिरोधकराणि उपादानानि स्थाने आविष्कृतानि। येषां प्रयोगेण सहवासजनितं सुखं लभमाना अपि नरनार्यः यदवधि ते नेच्छन्ति सन्ततिं तदवधि निरोद्धुं समर्थाः भवन्ति। तेषां कानिचन नामानि—लुपशलाका इयं गर्भाशयान्तर्वर्तिनी यावत्स्थास्यति तावद् गर्भस्थितिः नैव सम्भवा। कण्डोमनामकं मुद्रिकाकृतियन्त्रं गर्भाशयमुखं परिवृत्य तिष्ठति। फ्रेञ्चलेदरनामकं कवचं लिङ्गावरणाय भवति, यद् वीर्यं स्वस्मिन् संरक्षति। अन्या औषधयः अपि आविष्कृताः सन्ति येषां भक्षणेन योनिमुखे स्थापनेन वा गर्भस्थितिः नैव भवति। किन्तु एतानि उपकरणानि न तथा सिद्धान्ततः गर्भस्थितिं व्यावर्त्तयन्ति यथा पूर्वोक्तान्युपादानानि एतेषां यन्त्राणां दुष्प्रभावः अपि यत्र तत्र दृश्यते श्रूयतेऽनुभूयते च। यत् पुरुषाणां नपुंसकीकरणं स्त्रीणां गर्भाशयनिष्कासनञ्च शस्त्रचिकित्सया सम्प्रति क्रियते चिकित्सालयेषु तत् सर्वथा अप्राकृतमेव।

सन्ततिनिग्रहः स्वसुखाय सन्ततिसुखाय च भवतीति नात्र मतभेदः, किन्तु सन्ततिनिग्रहस्य कः श्रेयान् पन्था ब्रह्मचर्यम् आहोस्वित् स्वकीयम्

अनैच्छिकं यन्त्रैः यन्त्रणं वा। अतः सर्वैः पुम्भिः ब्रह्मचर्य्याऽऽचरणे आत्म-विश्वासः कर्तव्यः। विषयेऽस्मिन् पर्यन्ते ग्रन्थकर्तुः सूक्तिरियम्—

मातुः पितुः स्वदेशस्य सन्ततानां हितोदयः।
भविष्यति न सन्देहः परिवारनियोजनात् ॥

## श्रीशङ्कराचार्यः

लोकोत्तरचित्रचरित्रधुरधुर्याणां महता जन्म यदा कदा भगवतः कृपाकटाक्षविलसितेन कस्यचित् पुण्यवतो गृहे मात पित्रोः प्रमोदाय यशसे प्रसिद्ध्यर्थं च भवतीति विदितचरं सर्वेषां शेमुषोजुषाम्। एतादृक्-पुरुषोत्तमेषु शाङ्करीं तनुं प्रतिनिधीकुर्वतः जगद्गुरोः श्रीशङ्कराचार्यस्याऽपि नाम सादरं स्मृतिपथं नीयते। अतोऽत्र एतस्य विद्वन्मौलिमाणिक्य-स्वरूपिणो देशकालादिपरिचयः पाठकानाम्पुरस्क्रियते।

अयं हि महापुरुषः नम्बूदरीपादब्राह्मणकुलोत्पन्नस्य स्वनामधन्यस्य शिवगुरोः पाणिगृहीतायां सुभद्रायां ७८८ ईसवीयाब्दे भारताऽवनिं स्वजनुषा समलञ्चकार। एष तैत्तिरीयशाखाध्यायी केरलप्रदेशीयमालावार-प्रान्ते प्रवहन्त्याः पूर्णायाः नद्याः तटस्थित 'शशल' ग्रामवासी आसीत्। बाल्यकालादेव अयं परमप्रतापशाली भविष्णुः, विचारवीचि-निचयान्तर्वर्ती, दैवीप्रतिभयाऽऽश्लिष्टतनुः, सुरूपः, आजानुबाहुः, प्रशस्तललाटः, स्थिरधीः, शास्त्राध्ययनव्यसनी, शान्तिप्रियः, अष्टवर्ष-कल्प एव चतुर्षु वेदेषु तत्तदङ्गेषु दर्शनशास्त्रेषु स्मृतिषु च लब्धकौशलः कमपि विशिष्टमेव लक्ष्यं साधयितुकाम इव विराजतेतमाम्।

तस्यैतादृक् शास्त्राध्ययनमुखरं तपस्विजनातिशायिस्वरूपम् अक्षि-लक्ष्यीकृत्य को नाम सचेता श्रद्धाभारेण सद्यः विनतकन्धरो न भवेत्। प्रारम्भिके एव वयसि एतस्य लोकोत्तरचमत्कारकारिणीं कार्यसरणिं निश्चलपक्ष्मणा चक्षुषा विलोकयता केनापि तथ्यभाषणमुखरेण पद्य-मिदमुपनिबद्धम्—

अष्टवर्षे चतुर्वेदी द्वादशे सर्वशास्त्रवित्।
षोडशे कृतवान् भाष्यं द्वात्रिंशे मुनिरभ्यगात् ॥

अनेन महापुरुषेण द्वादशवर्षादारभ्य बह्व्यः सुरगिराभाग्यभण्डार-पूरणसमर्थाः पद्यगद्यरूपा रचनाः कृताः। याः स्तोत्रसाहित्यरूपेण भाष्य-रूपेण च अद्याऽपि योगिनां साहित्यिकानां विदुषां च मनांसि मोहयन्ति। स्तोत्रसाहित्यरूपेण आचार्यवर्य्यस्य या रचना अद्य सुलभाः सन्ति तासु भक्तिप्रवणाऽपि काव्यरचना सरणिः कालिदासादिकविशिरोमणिभिः अद्यार्ऽपि प्रतिस्पर्धां कुर्वतो परिलक्ष्यते। सङ्ख्यातीतासु तासु काश्चिदत्र प्रस्तूयन्ते—अद्वैतपञ्चरत्नम्, आत्मप्रबोधप्रकरणम्, प्रबोधसुधाकरः वाक्यवृत्तिः, लघुवाक्यवृत्तिः, सर्वसिद्धान्तसङ्ग्रहः सौन्दर्यलहरी, अम्बाष्टकम्, ब्रह्मज्ञानावलिः, शनिस्तोत्रम्, अन्याः च सन्ति स्वतन्त्रा रचनाः। तदनन्तरं येषां ग्रन्थरत्नानां कलेवरं स्वकीयभाष्येण भगवता स्फोतीकृतं तेषां नामानि—उपनिषदां, प्रस्थानत्रय्याः, गीतायाः, ब्रह्मसूत्रस्य, माण्डूक्यकारिकायाः, प्रकटार्थविवरणस्य, भामत्याः, ललितात्रिशतिस्योत्रस्य, विष्णुसहस्रनाम्नः च।

अस्य भाष्यशैली सुविशदा जिज्ञासुकल्पद्रुमा, स्वमतप्रतिष्ठापन-निपुणा सती कमपि विशिष्टं महत्वमावहति। अस्य सुकृती पिता बाल्ये एव एनं मातृसहायं कृत्वा सुरपुरीमगमत्। मातृममतामेदुरोऽपि पितृ-प्रेमपिपासितोऽयं शास्त्रज्ञानशुद्धान्तःकरणः भगवद्भक्तिरक्तः 'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या' इति तत्वतः जानन्नपि मातृस्नेहबद्धः सन्यासग्रहणेऽसमर्थः बभूव। यतो हि माता एतादृक्सुतरत्नं त्यक्तुं कथमपि तत्परा नासीत्।

एकदा अयं स्वगृहसमीपवर्तिन्यां पूर्णायां नद्यां स्नानार्थं जनन्या सह गतः तदानीं भगवदिच्छया जलमध्यस्थितः सद्भक्तइव कश्चिद् ग्राहो जग्राह तस्य पादौ, तदा सः स्वकीयं मरणं निश्चिन्वानः मातरं प्रार्थयामास। मातः! मकरमुखपतितस्य मम मृत्युः निकटस्थ एव, यदि भवती मह्यं सन्यास-ग्रहणाय अनुज्ञां प्रदास्यति तर्हि सम्भाव्यतेऽयं तव तनूजः परमेश्वरकृपया जीवनं लभेत। तदा मातुर्विचारितम् यद्यहम् एतस्यां स्थितौ सन्यासायाऽनुमतिं प्रयच्छामि, तर्हि भगवतः कृपया लब्धजीवनस्याऽस्य मुखमवलोकयितुं समर्था भविष्यामि अन्यथा ग्राहग्रहीतमेनं कथं कुत्र द्रष्टुं पारयामि। इत्थं मनसि विचारयन्त्या तया आज्ञप्तः प्राणेरप्यधिकप्रियः सुतः सन्यास-ग्रहणाय। आज्ञाप्राप्तिसमकालमेव ग्राहस्तं निगृहीतुमसमर्थो बभूव।

तदा प्रसन्नचेता स शंकरः श्रीमद्गौडपादाचार्यशिष्यात् श्रीगोविन्द-भगवत्पादगुरुतः दीक्षाम्प्राप्य निस्सारं संसारं रंहसा विहाय सन्यासाश्रमे प्राविशत्। ततो विद्वत्तल्लजः सः गुरोरनुज्ञया अद्वैतवादसिद्धान्तसमर्थन-धुरं धीरतया समुद्वहन् सर्वत्र विरोधिमतचयं खण्डयन् सिद्धान्तरूपेण स्वमतं प्रतिष्ठापयन् देशाद् देशं बभ्राम। इत्थं परिभ्रमन् स कदाचित् त्रिकण्टकविराजितायां, गङ्गाम्भः पावितायां, कालभैरवरक्षितायाम्, अन्नपूर्णायाः कृपया धनधान्यादिभिः समृद्धायां शिवराजधान्यां वाराणस्यां प्राप।

तत्र गत्वा सः पण्डितमण्डलीमण्डनं मण्डनमिश्रमहात्मानं द्रष्टुम् इयेष किन्तु तस्य वसतिमजानन् सः कामपि अनवद्याङ्गीं कूपाज्जलं निस्सार-यन्तीं रमणीरत्नमपृच्छत्। देवि! श्रीमतो मण्डनमिश्रस्य निवासस्थानं कुत्राऽस्ति? यदि जानासि तद् वद। एवं पृष्टा सा सुन्दरी प्रत्युत्तरमदात् पद्यरूपेण—

स्वतः प्रमाणं परतः प्रमाणं कीराङ्गना यत्र गिरो गिरन्ति।
शिष्योपशिष्यैरुपगीयमानमवेहि तन्मण्डनमिश्रधाम॥

इत्थं सः सरलतया मण्डनमिश्रसदनमलभत। तत्र स्वागतसत्कारान-न्तरम् मण्डनमिश्रस्य श्रीशंकराचार्येण सह समभूत् शास्त्रार्थः। तत्र निर्णायिकपदं सभाध्यक्षपदञ्च स्वीचकार विदुषोमूर्धन्या स्वनामधन्या मण्डनमिश्रस्य पत्नी। शास्त्रार्थाऽवसाने मिश्रपत्न्या निर्णयो दत्तः यत्, मिश्रमहोदयं श्रीशङ्कराचार्यः जितवानिति।

एष महापुरुषः यावज्जीवं लोकोत्तराणि कार्याणि कुर्वाणः, दिक्षु कुन्देन्दुकमनीयां कीर्तिं कलयन् द्वात्रिंशद्वर्षदेशीय एव सांसारिकीं लीलां समाप्य परब्रह्मसायुज्यमधिगतवान्, किन्तु शास्त्रवपुषा यावद्विन्ध्यहिमा-लयौ स्थास्यतः तावद्भारतीयानामादर्शस्वरूपः सुचिरं स्थास्यत्येव। अन्ते एतस्य सम्बन्धे लेखकस्योद्गारः—

अद्वैतमतसिन्धूनां महापोत इवाऽद्भुतः।
अवतारः शिवस्याऽयं शङ्करो लोकशङ्करः॥

# स्वामिवर्यो दयानन्दः

द्वापरे पार्थसन्देहसन्दाहसंशमनाय दुर्योधनादिकुपथप्रवृत्तराजन्यकस्य विनाशाय धृतावतारेण भगवना श्रीकृष्णेन गीतायां प्रत्यपादि यत्—

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्॥
परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे॥

इति प्रत्यक्षतः सत्यम्, अलौकिकशक्तिसम्पन्नस्य महर्षेर्दयानन्दस्यापि प्रादुर्भावः सर्वथा भगवदुक्तिमनुसरन् एव बभूव। अयं हि महापुरुषः सौराष्ट्रदेशे काठियावाडप्रान्ते टङ्कारानाम्नि नगरे औदीच्यविप्रवंशीयस्य सामवेदाध्यायिनः शिवाराधनतत्परस्य सुयशसः श्रीकर्षणत्रिवेदिनः पातिव्रतधर्मपरायणायां रुक्मिणीदेव्यां १८७२ ईशवीयाब्दे भाद्रपदमासे गुरुवासरोपेतायां नवम्यान्तिथौ मूलनक्षत्रे जनिमलभत्।

अथ सुतजन्महर्षितेन श्रीकर्षणत्रिवेदिना श्रौतकर्मानुरोधेन एकादशे दिवसे मूलनक्षत्रजन्मनोऽनुरूपम् अस्य नाम मूलशङ्कर इति कृतम्। तदनु प्राप्ते चाष्टमेऽब्दे अस्य सविधि उपनयनसंस्कारः अकारि। एवं क्रमेण प्राप्ते त्रयोदशे वर्षे अस्य पिता शिवरात्रिदिने एनं व्रतकरणाय आदिदेश। अयमपि श्रद्धया कृताह्निककृत्यः उपवासेन तद्दिनं व्यतायाय। अथ निशीथे पित्रा सह मूलशङ्करः अपि भूतभावनस्य भगवतो भवानीपतेः पूजनाय तत्परोऽभवत्। समाप्तायाश्च पूजाविधौ स विलोकयामास यदेको मूषकः शङ्करस्य उपरि अधस्तात् परितश्च तण्डुलकणभक्षणतत्परः प्रसन्नतया कूर्दति, एतद् दर्शं दर्शं तस्य हृदि एका विचारणा समुत्पन्ना यद् लोकशङ्करः शङ्करः एव साक्षात्करणीय, इति।

कतिचिद्दिनानन्तरं सः स्वभगिन्याः पितृव्यस्य च मरणजातनिर्वेदः तपसे मतिं चकार। अतः स परिजनात् परित्यज्य इतस्ततः साधुसन्यासिनामाश्रमेषु, नानातीर्थेषु परिभ्रमन् सन्यासिवर्य्यात् स्वामिपूर्णानन्दात् सन्यासदीक्षामवाप्य 'दयानन्द' इति नाम च अधिगम्य कमपि तोषमध्यगच्छत्। तदनन्तरं परिभ्रमन् स्वामिवर्यविरजानन्द-महाभागानामाश्रमस्थानं मथुरापुरीं प्राप अयं दयानिधिर्दयानन्दः। तत्र गत्वा अनेन

वेदादिसच्छास्त्राणामध्यापनाय प्रार्थिताः स्वामिवर्य्याः। तेऽपि वेदवेदाङ्ग-पारदृश्वानः, प्रज्ञाचक्षुषः एनं योग्यतमं शिष्यमाकलय्य वेदादिनिगमागमसमूहम् पाठयाम्बभूवुः।

इत्थमयं वेदान् धर्मशास्त्राणि दर्शनानि च स्वल्पेनैव कालेनाऽधीत्य समग्रं पातञ्जलं व्याकरणम् अष्टाध्यायिक्रमेण ततोऽधिगत्य कृतकृत्यतां गतः। तदनु अधीतसर्वशास्त्रः गुरुं बद्धाञ्जलिर्विनतकन्धरः प्रणमन्नुवाच— भगवन्तः किमपि सेवार्थमाज्ञापयन्तु येनाहमनृणोभवामि। यद्यपि अहं सर्वथा निर्धनः तथापि भवदाशिषा यत्र कुत्रापि वैदिकीं ध्वजामुनोलयितुं प्रभवामि। इति शिष्यवचासि समाकर्ण्य प्रसन्नान्तरात्मा गुरुः तमादिष्टवान्, पुत्र ! इदानीं देशः पाखण्डमदोन्मत्तः वैदिकपथं विहाय कुपथं गन्तुमुत्सुकः त्वं चतुर्षु दिक्षु गत्वा सर्वानुपदिशन् गाः रक्ष, नारीः पाहि, वेदान् उद्धर एवञ्च सुप्रसिद्धेऽस्मिन् आर्यावर्ते आर्यमतं प्रतिष्ठापयन् पाखण्डखण्डनपुरःसरं नवीनया प्रणाल्या वेदानां युक्तियुक्तं सम्पादनं विधेहि, इत्थं कुर्वंस्त्वं गुरुऋणाद् अनृणतां यास्यसि।

इत्याकर्ण्य आनन्दाम्बुधौ निमग्नो दयानन्दः गुरोः पादयोः प्रणिपत्य ओङ्कारसनाथितां पाखण्डखण्डिनीं पताकां हस्ते कुर्वन् ग्रामे ग्रामे, देशे देशे, प्रान्ते प्रान्ते वैदिकमतं प्रतिष्ठापयन् सर्वत्र भूमौ बभ्राम। जन्मजातां वर्णव्यवस्थां समुन्मूलयन् कर्मजां जातिव्यवस्थां संस्थापयन् 'जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते' इत्यस्य डिण्डिमघोषपुरःसर तेन जनमानसेषु महत्परिवर्तनं कृतम्।

प्राचोनतमं गार्गीप्रभृतिविदुषीकुलमूर्धन्यानाम् इतिहासमुद्भावयन् तेन 'स्त्रीशूद्रौ नाधोयाताम्' एतस्याक्षरशः खण्डनमकार। बालकवत् बालिकानामपि यज्ञोपवीतसंस्कारसमर्थनं तेन 'पुरा युगे तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते' इत्यादिशास्त्रोयप्रमाणैः प्रमाणीकृतम्।

प्रारम्भतः पुण्यलोकस्याऽस्य जीवनं निभालयन्तु भवन्तः। यदा दयानन्दस्य लोकश्रेयस्करिणीदृष्टिः पुष्टिं गता तदा तेन व्यलोकि यद् भारतीयाः अज्ञानध्वान्तमलिनाः स्वकीयपरिजनान् स्वल्पेनैव दोषेण परित्यक्तुं बद्धपरिकराः सन्ति। अतस्ते जातितः सम्बन्धतः सर्वव्यवहारतश्च उपेक्षिताः किंकर्तव्यमूढाः सन्तः यवनमतौ ईसाईमते च प्रविशन्तः

तेषां वर्गवृद्धि स्वजातिह्रासं च कुर्वन्तः आसन्। तदानीमयं साधूनां परित्राणाय दुष्कृतां विनाशाय वैदिकधर्मसंस्थापनार्थाय च प्रायतत। यत्राऽयं सिद्धार्थः सिद्धसङ्कल्पश्च बभूव।

एवम्प्रकारेण अस्य महानुभावस्य जन्म भारतीयेतिहासे साक्षाद् अवताररूपेण एव दृश्यते। एतादृशानां जन्म लोकोपकाराय सुसमानव-मानसजागरणाय च बोभवीति। अतएव पर्यन्ते पद्यपुष्पाञ्जलिः समर्प्यते लेखकेन श्रीमद्दयानन्दपदाब्जयोः—

दयानिधिर्दयानन्दो विरजानन्दसद्गुरोः।
अवाप्य ज्ञानभण्डारं ततान वैदिकं मतम्॥
उदारभावनास्फीतं मनो यस्य दयालुताम्।
बिभर्तिस्म विदां श्रेष्ठः स आर्यमतधूर्धरः॥
नारीणां शूद्रजातेश्च समुद्धर्ता भुवः सुतः।
अद्य देशस्य रक्षार्थं तस्य शिक्षा गरीयसी॥



## पण्डितमदनमोहनमालवीयः

धन्योऽयं भाग्यवान् भारतवर्षदेशो भान्ति यत्र भगवतो भूतभावनस्य भक्तिभानुकाः परश्शताः पुरुषाः ये पञ्चत्वं गता अपि दिगन्तविस्तृत-यशोभिः अमरतामाश्रयन्ति येषु मालवीयमहाभागः अन्यतम इति विश्वेषां मानवानां मनीषा। अयं हि महाशयः १८६१ ईशवीयाब्दे दिसम्बरमासस्य पञ्चविंशतितारिकायां स्वजनुषा गङ्गायमुनासरस्वतीनां सङ्गमेन पावितं प्रयागतीर्थमलञ्चकार। तदनु अनेन स्वकीयमध्ययनं प्रयागस्थे म्योर-सेन्ट्रलमहाविद्यालये प्रारब्धम्। तत्पश्चादयं कालिकाताविश्वविद्यालयतः स्नातकपरीक्षामुदतीतरत्।

अध्ययनसमाप्तेरनन्तरं १८८४ ईशवीयाब्दमारभ्य १८८७ यावदयं राजकीयमाध्यमिकविद्यालयेऽध्यापकपदे प्रतिष्ठापितः। सम्यक् प्रकारेण तस्य निर्वाहं कुर्वन् 'दैनिक हिन्दुस्तान' नामधेयस्य साप्ताहिक-हिन्दीपत्रस्य तथा आङ्ग्लभाषामयस्य 'इण्डियन ओपीनियन' पत्रस्याऽपि सम्पादकत्वं कृतवान्। १८९१ ईशवीयाब्दे व्यवहारपरीक्षामुत्तीर्य तत एव च वाक्की-

लताकार्यञ्च कुर्वन् बहुवत्सरं यावत् संयुक्तप्रान्तीयायाः धारासभायाः सदस्यः निर्वाचितोऽभवत् । तदानीमयं राष्ट्रियमहासभायाः प्रमुखः सञ्चालक आसीत् । तदनु अयं तत्सभाया अध्यक्षत्वेनाऽपि निर्वाचितः । १९३२-३३ ईशवीयाब्दयोः राष्ट्रियमहासभाधिवेशनस्य प्रधानपदे निर्वाचितः किन्तु अधिवेशनात्प्रागेव तदानीन्तरैधिकारिभिः अयं कारागृहे प्रापितः । क्रमशः १९१० ईशवीयवत्सरतः १९१९ ई० यावत् इम्पीरियल-लेजिस्लेटिवकौंसिलनामिकायाः सभायाः सदस्यो भूत्वा अनेन रौलटविधानस्य विरोधे तत्पदं सहसा परित्यक्तम् ।

अयं राजनैतिकक्षेत्रे सम्पादितयशोनिचयः धार्मिकक्षेत्रेऽपि अनन्यसाधारणां कमनीयां कीर्तिं बिभ्राणो विद्योततेस्म । अयं महापुरुषः सत्यवादितया दशरथं, गुणगणेन रामं, वर्णेन लक्ष्मणं, धर्मेण भरतं, सारल्येन शत्रुघ्नं, पराक्रमेण हनुमन्तं, नीत्या विभीषणं, शास्त्रव्यसनितया रावणं, विरागेण विदेहाधिपतिं जनकं, दृढप्रतिज्ञतया अङ्गदम् अनुकुर्वन् एकाकी अपि सुहृत् परिवारेण परिवारितो राम इव अभिरामः शोभतेस्म इति कस्य नाविदितम् ।

इमम् आश्रयन्तिस्म समं मित्राणि शत्रवोऽपि, आराधयन्तिस्म विद्वांसः, मूर्खाः, धार्मिकाः अधार्मिकाः धनिकाः निर्धनाः, शैवाः, वैष्णवाः, शाक्ताः, स्मार्ताः तदितरधर्मावलम्बिनोऽपि, परिवारयन्ति स्म सरसधार्मिकोपदेशश्रवणचटुलकर्णकुहरवन्तः सन्तः । सादरं पूजयन्ति श्रद्धासमृद्धाशयाः सङ्ख्यातीताः जनाः धृतावतारं कमपि देवविशेषमिव ।

अनेन सहस्रशोऽभारतीया अपि जनाः स्वोपदेशनिचयैः कृताः भारतीयाः, निषिद्धं गवां हननं, विहिता स्त्रीणां सतीत्वरक्षा, संस्थापिताः ग्रामे ग्रामे, देशे देशे धार्मिकसंस्थाः, संस्थापितः समस्तविश्वविश्रुतः काशीहिन्दुविश्वविद्यालयः । संस्थापितम् भगवतो विश्वनाथस्य सुविशालं मन्दिरम् । सस्नेहं दत्तः सत्यभाषणस्य, अहिंसायाः, परोपकारस्य, सत्सङ्गतेश्च सदुपदेशः ।

अस्मै नमः हिन्दुविश्वविद्यालयाय सहर्षं वामनीभवते मालवीयाय, भूपतिभिः भूमिः, धनिकैः धनं, विद्वद्भिः स्वं समग्रं जीवनं, सुवासिनीभिः काञ्चनजटितमणिरत्नमयानि, आभूषणानि, किमधिकं यस्य सविधे यद् यद्

आसोत् तत् तत् सहसा सोत्साहं सर्वैः सकलं दत्तम् । तत्र न कोऽपि मध्ये शुक्राचार्यताङ्गतः ।

अस्मात् सज्जनैः विद्या, धार्मिकप्रेरणा, बुद्धिः, विनयः, शमः, दमः, तपः, शौचं, क्षान्तिः, आर्जवं, सत्यम्, अहिंसा, दया, दाक्षिण्यं, वाग्मिता, सभापाटवप्रभृतयः लोकोत्तराः सद्गुणा अधिगताः । बिभ्यति स्म वैदेशिकाः किं वा भारतद्वेषदिग्धहृदयाः समकालिकाः सर्वेऽप्यभारतीयाः, पापिनः, दुराचारिणः स्वार्थान्धाश्च ।

अस्य त्यागस्य तपसः च फलमिदमस्ति यदयमपरः कल्पद्रुम इव विश्वविद्यालयो विराजतेऽत्र काश्याम् । यो हि धर्मदृढमूलः, प्रकाण्डपण्डितमण्डितप्रकाण्डः, विविधसङ्कायविस्तृतशाखः, समग्रविद्याविद्याततसारः, समन्ताच्छात्रावासवल्कलपरिवृतः, प्रातवर्षनवागतच्छात्रपत्रितः, छात्राणामुत्तीर्णतारूपफलयुक्तश्चाऽस्ति ।

अस्मिन् दिवङ्गतेऽपि तथैवाऽद्याप्यनुरक्ताः पुरुषाः यथा जीविते आसन् । मालवीयकुलदीपके जनानां विश्वासः श्रद्धा च यादृशी आसीत् तादृशी अपरत्र कस्मिन्नपि न श्रूयते नाऽपि दृश्यते च । स्निह्यन्ति स्म पुरुषमणौ दैशिका वैदेशिकाश्च सभ्याः सममेव ।

एतादृङ्मनस्विनः कुसुमस्तवकवज्जीवना भवन्ति । यथोक्तम् भर्तृहरिणा—'कुसुमस्तवकस्येव द्वे गतीह मनस्विनः । मूर्ध्नि वा सर्वलोकस्य विशीर्येत वनेऽथवा ॥' इत्थमयं स्वजीवनकलापं यापयन् १४६ तमे ईशवीये वत्सरे नवम्बरमासस्य १२ तारिकायां पाञ्चभौतिक शरीरं परित्यज्य शिवसायुज्यं प्राप । एतादृशां विषये एव एषा सूक्तिश्चरितार्थी भवति—

जयन्ति ते सुकृतिनो रससिद्धाः कवीश्वराः ।
नास्ति येषां यशःकाये जरामरणजं भयम् ॥



## राष्ट्रपिता-गान्धी

भारतीयस्वतन्त्रतासङ्ग्रामाऽऽकाशे दीप्यमाननक्षत्रेषु अन्यतमः, प्रभाभास्वरः, कृशदेहोऽपि महान् आत्मावान्, गुर्जरदेशीयोऽपि सर्वदा सर्वत्र सिद्धान्तस्वरूपत्वेन विराजमानः, महोच्चसम्मानशिखरारूढोऽपि विनीतवेशः, देशसेवासमासक्तहृदयोऽपि स्वशरीरसमाराधनपराङ्मुखः, विराजतेस्म भारतमातुः प्रियतमो वत्सः श्रीमान् मोहनदास-करमचन्दनामा ।

अयं महानुभावः अक्टूबरमासस्य द्वितीयायां तारिकायां १८७९ तमे ईशवीयाब्दे वैश्यवर्य्यस्य श्रीमतः कर्मचन्दगान्धिनः पुत्तलीबाई देव्यां-जनिमलभत। तदानीमस्य पिता राजकोटराज्यस्य प्रधानमन्त्रिपदे नियुक्त आसीत्। तस्य जननी श्रीमती पुत्तलीबाई देवी पतिभक्तिपरायणा, सूर्यसमाराधनतत्परा, सत्यभाषणानुरागवती, भारतीयस्त्रीगुणगणमण्डिता, महिलारत्नमूर्धन्या च आसीत्।

एष स्वकीयजनुषा काठियावाडान्तर्गतं पोरबन्दरनामकं नगरं समलञ्चकार। अस्य जन्मना वसुन्धराऽपि स्वं नामसार्थकममन्यत, हिमालयोऽपि अपरसहोदरजन्म इव परां मुदमापन्नः, मन्थनव्यथाविरहितः समुद्रोऽपि सहसा समुद्भूतम् अभिनवं किमपि पञ्चदशतमं रत्नं मन्वानः वीचिनिचयव्याजेन तमालिङ्गितुम्प्रवृत्तः। इत्थमासमुद्रं प्रसादचयो यस्य जन्मनि स्यात् स नूनं महापुरुष एव।

अथ शैशवमतिक्रम्य भावनगरे राजकोटनगरे च माध्यमिकीं परीक्षां यावत् शिक्षामधिगत्य स्वल्पे एव वयसि एतस्य विवाहसंस्कारः श्रीमती-कस्तूरवादेव्या सह समजनि। पारिवारिकसंस्कारैः सुसंस्कृतोऽयं व्यवहाराजीव (वकालत) शिक्षायै विदेशं गन्तुं साभिलाषो बभूव किन्तु अमुष्य जनन्या बह्वयो बाधाः समुत्पादिताः। यथा समुद्रयात्रा धर्मविरुद्धा तत्र गत्वा त्वदीयसंस्कारेषु विपर्ययः सम्भविष्यति, मद्य-मांसादिसेवनं तत्र अपरिहार्यम्. इति। तथापि दृढप्रतिज्ञेन सिद्धसङ्कल्पेन च तेन मातुरग्रे सशपथं प्रतिज्ञा कृता, यद् किमपि दुराचरणं तत्र प्राप्य तवायं सुतः कथमपि नाचरिष्यतीति।

तदनु इङ्लेण्डदेशगमनाय मात्रा अनुज्ञातो गान्धिमहोदयः तत्र गत्वा साभिनिवेशमध्ययने तत्परोऽभवत्। तत्रत्यां संस्कृतिं दर्शं दर्शं तस्य मनो नृत्यगीतादिशिक्षाग्रहणाय अपि तत्परमभवत्। अनेन किमपि शिक्षितमपि, यदा मातुः पुरतः शपथस्य स्मरणमायातं तदानीं तेन तत्कुतूहलं सर्वात्मना त्यक्तम्। विचारितश्च न मया यावज्जीवनमत्र वस्तव्यम्, किं करिष्यामि अनया शिक्षया किन्तु बायविलप्रभृतधर्मग्रन्थानामध्ययनं गीताध्ययनेन सह तत्र तेन विहितमेव।

शिक्षां समाप्य ततः परावृत्य सः प्रथमं मुम्बईनगरे व्यवहाराजीवकार्यं प्रारभत। तदनु कस्मिंश्चिदभियोगे भारतीयश्रेष्ठिनो विवाद-

सम्पुष्टये गान्धिमहोदयः अफ्रीकादेशं प्राप्तवान्। तत्र 'डरवन' नामधेय-नगरस्थिते न्यायालये न्यायाधीशेनायम् उष्णीशस्य उत्तारणाय आज्ञप्तः किन्तु स्वाभिमानिना अनेन तस्य आज्ञायाः उल्लङ्घनं विधाय ततः परावृत्य स्वकीयापमानञ्चानुभूय तैः सह विरोधः प्रारब्धः। अस्य मनः तत्रत्यानां भारतीयानां दशामालोक्य भृशम् अदूयत। तदनु तत्र स्थितेनैव अमुना 'नेटाल इण्डियन कांग्रेस' संस्था संस्थापिता। यया अनेन सुमहद् यशोऽर्जितम्। एष एव कालः श्रीमतो गान्धिमहोदयस्य राजनीतिप्रवेशस्य आसीत्।

१९१९ ईशवीयाब्दे अफ्रीकादेशतः परावृत्य भारतागमनसमकाल-मेवाऽसौ भारतीयकांग्रेससभायाम्प्रविश्य तात्कालिकैरधिकारिभिः सह असहयोगान्दोलनमकरोत्। अस्यैवाऽध्यक्षत्वे १९३० ख्रिष्टाब्दे भारतीयैः पूर्णस्वतन्त्रतायाः प्रस्तावः पारितः सर्वसम्मत्या स्वीकृतश्च जातः। तत्पश्चात् १९४२ ईसवीयाब्दे 'आङ्ग्लाः भारतं त्यजत' इत्येतदान्दोलनं समग्रे भारते अपूर्वेणोत्साहेन प्रसृतम्। यस्य दण्डस्वरूपं गान्धिमहोदयः सार्द्धवर्षद्वयं यावत् तदानीन्तनैरधिकारिभिः कारागृहे संस्थाप्य समुत्पीडितः।

इत्थम् अन्यैः प्रातःस्मरणीयैः भारतमातुः दुर्ललितैः वत्सैः सह गान्धिनापि विविधकष्टान्यनुभूय १९४७ तमे ईशवीयाब्दे एषा पूर्ण-स्वतन्त्रता सर्वैः सम्भूय सम्यक् समुपलब्धा। स्वतन्त्राप्राप्तेरनुपदमेव गौरण्डैः स्वकूटनीत्या हिन्दुजातीयानां यवनानाञ्च आभ्यन्तरिकं द्वन्द्वं प्रारब्धम्। तदा यवनाः अकाण्डे एव हिन्दूनां वधं स्वकीयं कर्तव्यमिति मन्यमाना दृष्टिपथमायान्ति स्म। तदानीन्तनं नोवाखालीप्रदेशीयं हिन्दू-वधं विस्मर्तुं कः क्षमः। तत्राऽपि अनेन अहिंसायाः उपदेशेन शान्तिस्थापना समकारि।

एवम्प्रकारेण भारतवसुमतीभक्तेनाऽनेनं यावज्जीवं स्वशरीरपोषण-चिन्तां परित्यज्य भारतं कथं भा-रतं भवेत्, इति विचारयता सर्वदा शान्तेः अहिंसायाः सत्यस्य च उपासना कृता। येषां प्रभावात् सर्वत्र विजयी भवन् अयं भारतभाग्यदुर्विपाकात् दैनिकीं प्रार्थनां 'रघुपति राघव राजाराम पतितपावन सीताराम, इत्याद्युच्चारयन् १९४८ तमे ईशवीये जनवरीमासस्य ३० तारिकायां दिल्लीनगरस्थायां सार्वजनिकसभायां

नाथूरामगोड्से नामकेन नृशंसेन एतस्य प्राणाः अपहृताः । अयमपि महात्मा 'सीताराम' इति उच्चारयन् दिवं गतः। सम्प्रति दिल्लीनगरे यमुनातटस्थे राजघट्टे एतस्य समाधिः प्रतिष्ठापितो विद्योतते। एतेन दलितवर्गस्य स्त्रीजातेश्च समुद्धारः कृतः। एतस्य हृदये नीचोच्चभावना कदाऽपि नासीत्। लघूद्योगैः स्वावलम्बिनो भवत इत्यस्य सावका.लक आदेशः । अतएवोच्यते ग्रन्थकृता—

मोहनः सज्जनानां यो दास आसीत् सचेतसाम् ।
मोहनदासगान्धीति ख्यातः स धरणीतले ॥



## पण्डितजवाहरलालनेहरू

काश्मीरदेशजनुषः पण्डितमोतीलालनेहरूमहोदयस्य कुलदीपकः पण्डितजवाहरलालनेहरू महोदयः १८८९ ईशवीयाब्दे नवम्बरमासस्य चतुर्दशतारिकायाम् उत्तरप्रदेशस्य प्रयागनगरं स्वजन्मना सुषमा-समन्वितं चकार। अस्य मातुः नाम स्वरूपरानीति आसीत्। मातुः पितुः च लालितो लालः जवाहरलालः भारतभारतीसमुपासकेषु अन्यतम आसीत्। अयं गृहे एव वैदेशिकेभ्यो विद्वद्भ्यः वैदशिकोभाषायाः प्रारम्भिकीं शिक्षां जग्राह। तदनु यदाऽयं पञ्चवर्षकल्प आसीत् तदा अस्य पिता एनमनयत् इङ्लैण्डनामकं देशम्। तत्र एतस्य ट्रिनिटोकैम्ब्रिजविश्वविद्यालये प्रवेशोऽभवत्। तत्र स्थित्वा एव अनेन स्नातकपरीक्षायां साफल्यमधिगतम्। तदनु एतस्य मनः विधानशास्त्रस्याऽध्ययनार्थं प्रवृत्तम्। तामपि परीक्षामुत्तीर्य 'वार एटला' उपाधिञ्चाधिगत्य समायातोऽयं भारतदेशम्।

ततः प्रारभत भारतदेशे प्राड्विवाककार्यं किन्तु अस्य मनः तत्र कार्ये नाऽलगत्। १९१६ ईशवीयाब्दे अस्य परिणयः श्रीमतीकमलादेव्या सह सम्पन्नः। तदनु १९१७ ईशवीयाब्दे श्रीमती इन्दिरादेव्याः जन्म अभवत्। वाक्कीलकार्यं कुर्वतोऽपि अस्य मनः भारतभूमेः सेवासु तत्परमासीत्। अत एवायं गान्धिमहोदयस्य सम्पर्कमधिगत्य स्वातन्त्र्यप्राप्तिकार्यसमर्थने संलग्नः सञ्जातः। आङ्गलदेशीयराजकुमारस्य

सम्मानाय तदानीन्तनैरधिकारिभिः विविधाः योजनाः प्रारब्धाः किन्तु ताः सर्वा एव विफलतां गता जवाहरमहोदयस्य बुद्धिपूर्वकैः प्रयत्नैः। आलोक्यैतद् अधिकारिभिः सः प्रथमप्रथमं कारागृहं प्रक्षिप्तः। ततः उन्मुच्याऽयं १९२३ ईशवीयाब्दतः वर्षद्वयं यावत् भारतीयलोकसभायाः मन्त्रिपदं सञ्चालयामास। तदनु १९३९ ईशवीयाब्दे लवपुरीय (लाहौर)-लोकसभायाः अयमध्यक्षो निर्वाचितोऽभवत्। एतदवसरे अनेन महापुरुषेण भारतस्य पूर्णस्वतन्त्रतायाः घोषणा कृता। अतः पुनरपि कारायां निक्षिप्तोऽधिकारिभिः वर्षद्वयपर्यन्तम्।

१९२१ ईशवीयाब्दे अस्य पिता पण्डितमोतीलालनेहरू भारतभुवं विहाय दिवं गतः। तदनन्तरम् एतदीया माता अपि लोकलीलां विहाय पत्युः सेवाभिलाषिणीव तत्रैव प्रयाता। इत्थं पित्रोः वियोगेन विरहेण च खिन्नोऽयं देशसेवायां तत्परोऽभवत्। ततः अनेन १९४२ ईशवीयाब्दे 'आङ्ग्लाः भारतं त्यजत' इत्याकारकः प्रस्तावः अधिकारिणां विरोधे पारितः, तदवसरे देशभक्तैः सम्भूय तेषां विरोधः प्रारब्धः। इत्थमालोक्य ते भारतं त्युक्तुमनिच्छन्तोऽपि एतस्य त्यागाय विवशा जाताः। तत्पश्चात् १९४७ ईशवीये वत्सरे अगस्तमासस्य १५ तारिकायां भारतदेशः पराधीनतापाशाद् उन्मुक्तोऽभवत्। एतस्य कार्ततत्परतां, देशानुरागम्, अदम्याञ्च उत्साहशक्तिं, वाक्चातुर्यं, नीतिनैपुण्यं, व्यवहारकौशलञ्च विलोक्य भारतीयजनतया अयं भारतस्य सर्वप्रथमः प्रधानमन्त्री अङ्गीकृतः। तदनन्तरम् अयमाजीवनं सम्यक्तया तत्कार्यं सञ्चालयन् देशस्य गौरवाय प्राणपणेन संलग्न आसीत्।

अयं यत्र कुत्राऽपि भाषणाय यातिस्म तत्र महान् जनसम्मर्दो दृष्टिपथमायास्तिस्म। इमम् अवलोक्य बालयुवावृद्धाः सर्वे प्रसोदन्तिस्म। अनेन महापुरुषेण भारतस्य शुभ्रं यशः स्वयशसा सह दिक्षु विस्तारितम्। अस्मै नमः इति कथयन्तो जनाः अमन्दानन्दमेदुरा भवन्ति स्म। अस्मात् किमपि भयं नासीद् भारतवासिनां हृदयेषु। अस्य स्वभावः, व्यवहारः चातुर्यं, देशानुरागः लोकोत्तरतां भजतेस्म। अस्मिन् विश्वसन्ति सर्वे भारतीयाः अभारतीयाश्च पितृवद्, पितृव्यवद्, भ्रातृवत् पुत्रवच्च।

एतस्य प्रधानमन्त्रित्वकालः भारतस्येतिहासे स्वर्णाक्षरैः लेखनार्हः। एतादृशाः पुरुषोत्तमा भारतभुवं न सर्वदा कृतार्थयन्ति अपितु यदा

भगवतः कृपादृष्टिः जनतासु भवति तदैव जवात् ज़वाहरसदृशान् प्रेषयति सः समेषामुपकाराय । अतएवोक्तं निबन्धकृता—

समस्तलोकसङ्कल्पकल्पनाकल्पपादपे ।
जगज्जैत्री जयश्रीर्नः प्रजवाभूज्जवाहरे ॥

## लालबहादुरशास्त्री

को जानातिस्म वाराणसीसमीपस्थ-मुगलसरायनगर-निवासिनः सामान्यगृहस्थजीवनं यापितवतः श्रीशारदाप्रसादस्य गृहे भारतरत्नायमानो सम्प्रति भूतपूर्वोऽपि अभूतपूर्वः भारतस्य प्रधानमन्त्री श्रीमान् लालबहादुर-शास्त्री समुत्पत्स्यते । अयं हि महानुभावः १९०४ ख्रिष्टाब्दे अक्टूबरमासस्य द्वितीयायां तारिकायां श्रीमतः शारदाप्रसादस्य गृहे शारदा-प्रसादवत् जनिमलभत । अमुष्य विद्याध्ययनं वाराणसीनरगस्थे हरिश्चन्द्रमहाविद्यालये समभवत् । स्वकीयाऽध्ययनसमये अनेन अनेकाः यातना अनुभूताः । अयं पदातिरेव पठनाय प्रतिदिनं ततो वाराणसीम् आयातिस्म । वर्षर्तौ यदा नदी मार्गं रुन्धतिस्म तदा अयं पठनलोभेन तां बाहुभ्यां निस्तीर्य कथं कथमपि समये विद्यालयमागच्छतिस्म । अमुना काशीविद्यापीठतः बी. ए. समकक्षा शास्त्री परीक्षा समुत्तीर्णा, अत एवाऽयं शास्त्रीति नाम्ना सर्वैः जोघुष्यते ।

क्रमेण स्वकीयाध्ययनं समाप्य अयं महात्मनो गान्धिनः आज्ञया स्वतन्त्रतासङ्ग्रामे भागमगृह्णात् । तदनन्तरं भाषणपाटवं जनतासङ्घटनं, तदानीन्तनसर्वकारविरोधप्रदर्शनं च इत्येवमादयः अस्य नैसर्गिकाः गुणाः क्रमशः प्रकटिताः । येन स्वल्पीयसि काले एव अयं सर्वेषां स्वतन्त्रतासङ्ग्रामसञ्चालकानाम् आदरमलभत किन्तु तात्कालिकसर्वकारेण अयं बहुवारं कारागारयातनाभिः कृशीकृतः । एतस्य कतिपय-कार्यकलापाः अत्रोद्ध्रियन्ते, यैः अस्य योग्यता, कार्यक्षमता च अनुभव-गम्या सम्पत्स्यते ।

सर्वप्रथमं श्रीशास्त्री १९३० ई० वत्सरतः १९६५ यावत् प्रयागस्य 'जिलाकाङ्ग्रेससमितेः' अध्यक्षतां निरवहत् । तदनु १९३७ ई० 'उत्तर-प्रदेशीयकांग्रेससमितेः' महामन्त्री आसीत् । तदनन्तरं तत्रैव विधान-

सभासदस्यत्वेन निर्वाचितः, महता कौशलेन स्वं कार्यकलापं सम्पादयन् सर्वेषां स्नेहपात्रं जातः। क्रमेण कतिपयवर्षापगमे अयं महाभागः १९५१ ई० लोकसभायाः सदस्यो भूत्वा अग्रिमे वर्षे धूमयानविभागस्य मन्त्रिपदगृह्णात्, समचालयच्च यथाविधि तत्कार्यम्। एकदा एका धूमयानदुर्घटना समभवत् तदा विरोधपक्षस्य कथनात्पूर्वमेव अनेन तत् पदं त्यक्तम्, एतदवलोक्य नेहरूमहोदयेनाऽयं निर्विभागीयमन्त्रिदेन सम्मानितः। आगामिनि निर्वाचने सः पुनः जनतया सादरं निर्वाचितः सन् १९५८ ई० वाणिज्यविभागीयमन्त्रिपदमलभत्। तत्पश्चाद् दैवदुर्विपाकात् १९६४ ई० मईमासस्य २७ तारिकायां श्रीजवाहरः भारतभुवं विरहय्य दिवं गतः।

तदनन्तरम् अन्त्याक्षर्याः क्रमेण भारतमातुः अपरो ललामो लालः श्रीलालबहादुरः शास्त्री भारतस्य द्वितीयप्रधानमन्त्री अभवत् काङ्ग्रेस-सदस्यसमवायसहयोगेन। महामान्योऽयं वपुषा लघुकायोऽपि आत्मना महान् आसीत्, कायस्थः अपि सर्वत्रस्थः, शान्तिप्रियः अपि पाकिस्तानादि-दुष्टदलनदक्षः, श्यामवर्णोऽपि उज्ज्वलचरित्रः, आत्मचिन्तापराङ्मुखोऽपि देशसेवाकर्मसु दत्तावधानः च आसीत्। अयं मृदुस्वभावः, प्रखरबुद्धिः, कार्य-कुशलः, त्यागमूर्तिः, सदाचारी, मितभाषी, धर्मतत्परः च विराजते स्म।

अस्य प्रधानमन्त्रिपदाऽऽरूढे सति पाकिस्तानदेशीयैः सहसा भारतभूः स्वसैनिकैः समाक्रान्ता तदानीं परस्परसंहारकारि जन्यमजनि। एतस्मिन् समये राजनीतिनिपुणस्य वर्तमानप्रधानमन्त्रिणः अस्य बुद्धिकौशलेन भयाऽऽकुलाः पाकिस्तानदेशीयाः युद्धं विरम्य स्वदेशं प्रत्यावृत्ताः किन्तु भारतपाकिस्तानयोः सर्वविधविवादास्पदविषयाणां स्थायिसमाधानार्थं रूसदेशीयप्रधानमन्त्रिणः कोसिजनमहोदयस्य आध्यक्षे भारतस्य प्रधान-मन्त्रिणः पाकिस्तानदेशस्य राष्ट्रपतेश्च तासकन्दनगरे सम्मेलनमेकं समायोजितम्। कस्मिंश्चित् कुयोगाऽऽक्रान्तदिवसे तत्र भागं गृहीतुं गतः शास्त्रिवर्य्यः। यद्यपि तत्र सन्धिवार्ता सफलतया सम्पन्ना, सर्वेषां संयुक्तपत्रे हस्ताक्षराणि च संवृत्तानि, यः कोऽपि इमां शान्तिवार्तां श्रृणोतिस्म स एव आनन्दितो भवतिस्म किन्तु कालः कं केन व्याजेन कदा कुत्र कवलीकरोति इति तु न कोऽपि जानाति।

हा हन्त! भारतस्य प्रधानमन्त्री श्रीमान् लालबहादुरशास्त्री तत्रैव तासकन्दनगरे रात्रौ एकवादनसमये अकस्मात् हृत्पीडया आक्रान्तोऽभवत्।

तस्य अशान्तिकारिणी सा पीडा तं निर्निमेषीकृत्य, मूकीकृत्य, जडीकृत्य, निःस्नेहीकृत्य किमधिकं निष्प्राणीकृत्य च तदीयपरिवाररूपभारतीयान् दुस्तरे शोकसागरे निपात्य निवृत्ता जाता। तस्य भारतागमनं प्रतीक्ष्यमाणा तत्पत्नी, परिजनाः देशवासिनश्च अरुन्तुदाम्, असम्भाविनीं च वार्तामिमामाकर्ण्य दैवहतकं शपन्तः परं विषण्णा जाताः। तस्य पार्थिवशरीरं विमानेन भारतभुवमानाय्य दिल्लीनगरस्थे यमुनायाः परमपावने तटे वह्निना संस्कृतम्।

तदानीं रूसस्य प्रधानमन्त्रिणा पाकिस्तानस्य राष्ट्रपतिना च स्वर्गीयलालबहादुरशास्त्रिणः पत्नी श्रीमती ललितादेवी कथं कथञ्चित् समाश्वासिता। इयं रहस्यपूर्णा शास्त्रिणः मृत्युः सर्वदा भारतीजनमानसं दूयमाना स्थास्यति। पर्यन्ते निबन्धकृतः पद्यमिदं तस्य भव्यभावनास्मारकरूपेण चिराय विराजते—

देशसेवासु स्वप्राणास्तृणीकृत्य विसर्जिताः।
येन शास्त्रिवरेण्येन स धन्योऽस्ति भुवस्तले॥ १॥
एतादृक् पुरुषश्रेष्ठा भगवत् कृपया भुवि।
कदाचिदेव जायन्ते धरासौभाग्यवृद्धये॥ २॥



## डॉ० सम्पूर्णानन्दः

इयं वाराणसी नगरी त्रयस्त्रिंशत्कोटिदेवानाम् आवासभूमिः, भगवत्या भागीरथ्याः सीकराम्भोभिः पवित्रा, विश्वविद्यालयत्रयाणां जननी, महात्मनो गौतमबुद्धस्याश्रयप्रदात्री च शम्भोस्त्रिशूलाग्रवर्तिनी चिराद् विराजते। एतादृङ्नगर्यां कायस्थपरिवारे परोपकारपरायणस्य धार्मिकभावनापरिपुष्टसंस्कारस्य श्रीमतो विजयानन्दमहोदयस्य सद्मनि १८९० ईशवायाब्दे जनवरीमासस्य प्रथमतारिकायां श्रीसम्पूर्णानन्दमहोदयस्य जन्म अभवत्। पुत्रे पितुः सर्वतोमुखी प्रतिभा भवति, इत्युक्तेरनुसारं न केवलमेतेन पितुरुत्तराधिकार एवाऽधिगतः अपितु तस्य सर्वे शीलविनयादिगुणा अपि आत्मसात्कृताः।

श्रीसम्पूर्णानन्दः काश्यामेव प्रारम्भिकीः सर्वा विद्या अधिगतवान्। तदनन्तरं विज्ञानस्योच्चशिक्षां प्राप्तुकामः अयं प्रयागनगरे स्वकीयाऽध्ययनं प्रारब्धवान्। तत्र स्थितोऽयं बी. एस-सी. परीक्षामुत्तीर्य स्नातकोत्तरां एल. टी. इति दीक्षामपि अग्रहीत्। छात्रजीवनं सपरिश्रमं व्यतीत्य लब्धोपाधिः इन्दौरनगरीय-विद्यालये विज्ञानाध्यापकपदेऽयं नियुक्तः स्वकीयाऽध्यापनकौशलेन छात्राणां मनोविनोदपुरःसरं तेषां ज्ञान-विज्ञान-वृद्ध्यर्थं सर्वकालं प्रयततेस्म। तदनु वृन्दावने पश्चात् पुनः काशीं परावृत्य काशीविद्यापीठे अध्यापनमकरोत्। आसीत् तदानीं भारतीय-स्वतन्त्रताऽऽन्दोलनस्य महान् उग्ररूपः।

तदा गान्धिमहोदयः एतस्य राजनीतिविषयिणीम् अभिरुचिं विज्ञाय एनमाहूतवान्। अयमपि स्वकीयाम् आजीविकां सहसा विहाय महात्मनः पथानुवर्ती जातः। अन्यैः तात्कालिकैः नेतृभिः सह कायेन वाचा मनसा निरन्तरं प्रयतमानेन अनेन गान्धिने बहुसाहाय्यं प्रदत्तम्। राजनीतिकार्येषु संलग्नोऽपि अयं यथावसरं स्वाध्यायपरायणः अभवत्। अस्य लिखिता निबन्धाः विद्यालयानां महाविद्यालयानां च पाठ्यक्रमेषु निर्धारिताः सन्ति। एतस्य हिन्दीभाषा संस्कृतनिष्ठा अत एव महन्महत्त्वमावहति। दार्शनिकविषयेषु सामान्यविषयेष्वपि च अनेन ग्रन्थरचना व्यधायि। येषां सङ्ख्या प्रायः चतुर्दशाधिका वर्तते।

नासदीयसूक्ते अनेन विदुषा सर्वोत्तमा टीका लिखिता। अस्य वेद-भागस्य सर्वप्रथमः टीकाकारः श्रीसम्पूर्णानन्दमहाभाग एव नान्यः। 'आर्यों का आदि देश, ग्रन्थः ऐतिहासिकगवेषणापूर्णः विराजते। श्रीसम्पूर्णानन्दो यादृग् गम्भीरस्वभाववान् आसीत् तादृगेव गहनविषयेषु अनेन लेखाः अपि लिखिताः। अतएव एतल्लिखितलेखानां भाषा गहना भावाश्च विशदाः सन्ति। इत्थम् एव मनस्वी स्वकीयगम्भीराय अध्ययनाय, मननाय, चिन्तनाय च सुप्रसिद्धः। 'समाजवाद' नामकपुस्तकमधिकृत्य केन्द्रीयसर्वकारेण एतस्मै 'मङ्गलाप्रसाद' पारितोषिकः सादरं समर्पितः।

अयं महानुभावः स्वतन्त्रताप्राप्तेरनन्तरम् उत्तरप्रदेशस्य 'मुख्यमन्त्रि' पदे ससम्मानं नियुक्तोऽभवत्। पञ्चवर्षाणि यावत् तत्पदस्य सम्यक्तया सञ्चालनम् अनेन कृतम्। उत्तरप्रदेशीयमुख्यमन्त्रित्वकालं समाप्य अयं

राजस्थानप्रदेशस्य 'राज्यपाल' पदे नियुक्तोऽभवत् । अस्य एव मनोरथशतैः समुत्पन्नः 'वाराणासेयसंस्कृतविश्वविद्यालयः' विराजते । यः काश्याः आध्यात्मिकीं शोभां पुष्णाति । अयं सम्प्रति एतस्यैव नाम्ना विश्व-विश्रुतताङ्गमितः । वेदानां, न्यायस्य, व्याकरणस्य, साहित्यस्य, योगस्य दर्शनस्य, ज्यौतिषशास्त्रस्य, शिक्षाशास्त्रस्य, आयुर्वेदस्य बौद्धसाहित्यस्य, विदेशोयभाषाणां विज्ञानप्रभृतिविषयाणाञ्च सविधि शिक्षां दीक्षाञ्चाधि-गत्य अत्रत्यस्नातकाः दिगन्तेषु एतस्य यशः विस्तारयन्ति ।

पर्यन्ते, महानुभावोऽयं ईश्वरभक्तिपरायणः सन् स्वाध्यायेन काश्यां स्वकीयं चरमं कालं गमयन् १९६८ ईशवीयाशब्दे ऐहलौकिकीं लीलां परिसमाप्य नश्वरं पाञ्चभौतिकञ्च शरीरं विहाय शिवसायुज्यतां गतः । एतस्य लघुभ्राता श्रोपरिपूर्णानन्दमहोदयः शरीरेण कृशः अपि प्रतिभया तादृशेव विलसति । एतदर्थं श्रद्धाञ्जलिरूपेण निबन्धकर्तुः सूक्तिरेषा प्रस्तूयते—

धन्या माता पिता धन्यो धन्याः सम्बन्धिनोऽखिलाः ।
सुतं सम्बन्धिनं प्राप्य सम्पूर्णानन्दसन्निभम् ॥
भारतं-भा-रतं येन देशो गौरवताङ्गतः ।
प्रसीदन्ति यमलोक्य सार्थकं तस्य जीवनम् ॥

●

## श्रीमती-इन्दिरागान्धी

अपरिमितयशोवतः श्रीमतः पण्डितप्रवरमोतीलालनेहरूमहाभागस्य पौत्री, भारतवर्षस्य प्रथमप्रधानमन्त्रिणः स्वनामधन्यस्य पण्डितजवाहर-लालनेहरूमहोदयस्य पुत्री भारतवर्षस्य तृतीया प्रधानमन्त्रिणी, महात्मनो गान्धिनः पथानुवर्तिनी, धीमती, श्रीमती इन्दिरागान्धी पितुरपि अधिका लोकप्रिया, नीतिकुशला, शासनप्रवणा 'पुत्रादिच्छेत् पराजयम्' इतीमां सूक्तिं चरितार्थयन्ती, तथा 'आकरे पद्मरागाणां जन्म काचमणेः कुतः' सुभाषितमिदं सफलयन्ती, दुर्दैवग्रस्तस्य भारतदेशस्य भागधेयानि विपरि-

वर्तयन्ती, अजेयाशक्तिरिव कामपि अनुपमां शोभां बिभ्रती जगतां श्रेयसे रथेयसे च विराजतेस्म।

अस्याः जन्म काश्मीरदेशीयस्य सारस्वतकुलावतंसस्य श्रीमतो जवाहरलालनेहरूमहोदयस्य पत्न्याः कमलादेव्याः प्रयागस्थिते आनन्द-भवने नवम्बरमासस्य १९ एकोनविंशतितारिकायां १९१७ एकोनविंश त्युत्तरसप्तदशशततमेऽब्दे समभवत्। मातापित्रोः दुर्ललिता इयं भारतवर्षे विदेशे च क्रमशः सर्वोच्चां शिक्षां प्राप्तवती। अध्ययनकालेऽपि अस्या मनः परतन्त्रतापाशैर्बद्धानां भारतीयानां विमुक्तये विचारयतिस्म, यत् कथम् एतेषां मुक्तिः स्यादिति। यदा इयं पित्रा सह विदेशेषु गच्छतिस्म, तदा अपि तत्रत्यानां भारतीयानां दुर्दशां विलोक्य एषा मर्माहता भवतिस्म। 'चक्रारपङ्क्तिरिव गच्छति भाग्यपङ्क्तिः' इतिवद् विपक्ष-दलाऽऽकुलितस्य, शत्रुवर्गैराक्रान्तस्य च भारतस्य भाग्यसमृद्धये श्रीमतो लालबहादुरशास्त्रिणः पश्चात् जनवरीमासस्य १९ तारिकायां १९६६ तमे ईशवीयाब्दे प्रधानमन्त्रिपदम् अधिरूढा श्रीमती-इन्दिरा-देवी। तत्पदं स्ववशीकृत्य क्रमेण भुवनद्विषां पेष्टुं प्रावर्तत इयमदम्येनोत्साहेन।

'कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति' इति वद् अनया जन-तासु वात्सल्यपूर्णं व्यवहृतम्। कुत्रचित् कालिदासवचनम् 'त्याज्यो दुष्टः प्रियोऽप्यासीदङ्गुलीवोरगक्षता, इति अनुकुर्वती दुष्टानां निग्रहे प्रवृत्ता ऽभवत्। तदनु क्रमेण अनया कोषागाराणाम् (बैंक) राष्ट्रियता कृता, राज्ञां कृते राजकोषतः यद्धनं मिलतिस्म (प्रिविपर्स) तस्य समापनं कृतम्, एवमादि तस्याः साहसिकं कर्मजातं समालोक्य धनिकानां समर्थकाः संसत्सदस्याः हृदि उद्वेजिताः समभवन्। अतएव १९६९ तमे ईसवीयाब्दे काङ्ग्रेसदलस्य विभाजनं जातम्। तत्पश्चात् प्रधानमन्त्रिणी महोदया जनतायाः विश्वाससङ्घटनार्थं १९७० ई० संसदः समापनं घोषितवती। तदनु १९७१ तमे ईशवीयाब्दे पुनः निर्वाचनं सम्पन्नं, तदा ३५० सङ्ख्याकानां काङ्ग्रेससदस्यानां विजयः प्रधानमन्त्रिण्याः समृद्धं व्यक्तित्वं व्यनक्तिस्म। पुनः एतस्या यशोगानं प्रसृतं सर्वत्र, कान्दिशीकतां गताः सर्वे विरोधिनः।

'कण्टकेनेव कण्टकम्' इति नीतिवचनं स्वीकृत्य प्रधानमन्त्रिण्या तेषां समेषां देशद्रोहिणां निग्रहः कृतः। आपत्कालिकीं स्थितिम् उद्घोष्य

अनया घोषणया अद्य व्यक्तिगतजीवने, समाजे, व्यवहारे, अन्नपानादि-सम्बन्धिवस्तुमूल्येषु न्यूनता, शारीरिकी, मानसिकी च शान्तिः लम्भिता सज्जनैः ।

भारतीयनारीषु आदर्शभूता इयं नारीणां जागरणाय बद्धपरिकरा अस्ति । अस्याः विंशतिसूत्रीयः कार्यक्रमः समस्तभारतस्य कल्याणाय भविता इत्यस्माकं मनीषा । राष्ट्रस्य शुभेच्छुभिः सर्वदा प्रधानमन्त्रिण्याः सहयोगः कर्तव्यः । येन तस्याः पदे-पदे साहससमृद्धिः स्यात् । पर्यन्ते च शुभकामनेयं जागर्ति निबन्धकर्तुः—

जवाहरसुता जीव्याद् भारतोदयकाङ्क्षिणी ।
धीमती श्रीमती मान्या धीरा वीरा नयोज्ज्वला ॥



## दुर्लभं भारते जन्म, धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे धन्योऽयं भारतं देशः

अखण्डब्रह्माण्डनायकेन भगवता स्वयम्भुवा चतुर्दशलोकात्मकं जगत्सृष्टम् । इदं सम्पूर्णं जगत् चराचरैर्व्याप्तमाभाति । इमे सर्वे चराचराः किमुत देवा अपि इमं भारतदेशं द्रष्टुं कामयन्ते । वयं भारतीयाः, अतएव अस्माकमेष उद्घोषः 'धन्यास्तु ते भारतभूमि भागे, 'धन्योऽयं भारतं देशः, किं वा 'दुर्लभं भारते जन्म' इति ।

भारतवर्षस्य यो हि महान् महिमा विराजते तं स एव जानाति येन सकृदपि अत्रागत्य एतस्य चाभ्यन्तरिकं बाह्यञ्च स्वरूपं सम्यक्तया दृष्टमनुभूतञ्च स्यात् । तत्स्वरूपं यथाबुद्धिवलोदयम् अत्र वर्णनपथमवतार्यते । भारतीया संस्कृतिः संस्कृतनिष्ठा, संस्कृतं हि दैवीवाग् यत्र वेदानारभ्य सर्वो ज्ञानराशिः संस्कृतमय एव । अलौकिकं भारतीयं दर्शनं यदर्थम् अद्यावधि यतमानाः पाश्चात्याः न तस्य पारङ्गता । एतस्य मूलभूताः अस्माकम् अध्यात्मज्ञानवन्तः मनुष्या एव आसन्, येषां त्रिकालममलमासीत् । अतएव ते सम्पूर्णं जगत् करामलकवत् पश्यन्तः कणादादयो महर्षयः विविधदर्शनशास्त्राणि प्राणैषिषुः । तेषु षड् आस्तिकदर्शनानि—योग, साङ्ख्य-न्याय-वैशेषिक-वेदान्त-मीमांसाख्यानि । षडेव नास्तिकदर्शनानि—

शून्यवादेनेकं दर्शनं माध्यमिकानाम्, क्षणिकज्ञानमात्रवादेनापरं योगाचार्याणाम्, ज्ञानाकारानुमेयक्षणिकबाह्यार्थवादेन ततीयं सौत्रान्तिकानाम्, प्रत्यक्षलक्षणक्षणिकबाह्यार्थवादेन चतुर्थं वैभाषिकाणाम्, देहातिरिक्तदेहपरिणात्मकवादेन पञ्चमं दिगम्बराणाम्, तथा देहात्मवादेन षष्ठं चार्वाकाणाम्। इति षड्वेदबाह्यत्वान्नास्तिकदर्शनानि। एतेषां समेषां विशेषज्ञः भारतः भारतीयो वा विद्वान् आसीत् अस्ति भविष्यति च, यथोक्तम्मनुना स्वकीयायां स्मृतौ—

एतद्देशप्रसूतस्य　　　　सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चारित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥

एतदर्थम् अयं भारतदेशः जगद्गुरुपदेनाऽपि समाद्रियते। कथङ्कारम् अयम् उदारभावभरितहृदयोऽस्ति तदप्यवलोकनीयम्। सत्यं वद, धर्मं चर, अहिंसा परमो धर्मः, सङ्गच्छध्वं, संवदध्वम्, मित्रस्य चक्षुषा सर्वाणि भूतानि समीक्षे, मागृधः कस्यस्विद् धनम्। इत्यादिसर्वहितकरान् भावान् उररीकुर्वन् अयं सुचिराद् विराजते, अतः कोऽन्यः देशः अस्य तुलामारोढुं प्रभवेत्। एतद्भारतवर्षस्य आध्यात्मिकस्वरूपदिग्दर्शनम्। एतदनन्तरमस्य बाह्यभवं सुषमासमृद्धम् एकच्छत्रं साम्राज्यं दिङ्मात्रमुदाह्रियते। श्रीमद्भागवते वेदव्यासमहाभागः भारतभुवं वर्णयन् कथयति—

अहो! भुवः सप्तसमुद्रवत्या द्वीपेषु वर्षेष्वधिपुण्यमेतत्।
गायन्ति यत्रत्यजना मुरारेर्भद्राणि कर्माण्यवतारवन्ति॥

यत्र भगवतः समये समये अवताराः समभवन् स एव भारतदेशः। रामराज्ये वानररूपेण, द्वापरे चतुःषष्टिकलावतारस्य श्रीकृष्णस्य बाललीलां द्रष्टुकामा देवा गोपीरूपेण अस्मिन्नेव भारते वर्षे चिरमुषिताः। अस्य देशस्य शुभ्रमुकुटायमानः हिमालयो नाम नगाधिराजः प्रहरीति निगद्यते। यतः प्रभवा गङ्गा, गोदावरी, यमुना, सरयू, ब्रह्मपुत्र, कावेरो प्रभृतयो नद्यः चराचरं तोषयन्त्यः, पावयन्त्यः, सिञ्चन्त्यः, जननीव शीतलं हृदयमुद् वहन्त्यः आसमुद्रं प्रयान्ति। समुद्रश्च एतस्य पादोदकैः परिपूर्णः आत्मानम् अपारम् अगाधञ्च मनुते।

व्यास-वाल्मीकि-कालिदासादयः कविकुलमूर्धन्याः, हरिश्चन्द्र-मान्धाता-शिवि-राम,कृष्ण युधिष्ठिर-विक्रमादित्य-भोजप्रमुखाः पार्थिवा अमुष्य एव

यशोविस्तारयन्तः इममेव देशं समलङ्चक्रुः। विविधतीर्थानामपि अयमेव एकमायतनम्। अत्रैव भगवता पार्थसम्बोधनाय गीता सुगीता। अत एव सदाऽऽशयसमृद्धायां भारतभुवि देवा अपि मनुष्यरूपेण स्वेच्छया अवतरन्ति, प्रशंसन्ति च एतस्य भागधेयानि। तद्यथा—

गायन्ति देवा किल गीतकानि धन्यास्तु ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गास्पदहेतुभूते भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात्॥

यत्र आगमनाय, आगत्य निवासाय च स्वर्गीयाः अपि अभिलषन्ति तस्मै कः न स्पृहयेत्। नूनं भारतभूः एव 'वसुन्धरा' 'विश्वम्भरा' 'वसुमती' च एतानि नामानि सफलयति। अतः सत्यमिदमुच्यते 'दुर्लभं भारते जन्म' किं वा 'धन्योऽयं भारतं देशः'। अन्तेऽधस्तनमिदं पद्यमुद्धरन् विरम्यते विस्तरभयात्—

धन्योऽयं भारतं देशो धन्येयं सुरभारती।
तत्पूजका वयं धन्या अहो! धन्या परम्परा॥



## काश्यां मरणान्मुक्तिः,
## वाराणसी

वरणा इति, असो इति च नद्योर्मध्ये विराजमाना, मानापनोदिनी-समस्तनगरीणां, शम्भोस्त्रिशूलमध्ये कृतावस्थाना, भगवत्या भागीरथ्या पाविता समाश्लिष्टा च, दण्डपाणिना कालभैरवेण सुरक्षिता, भूतभावेन भगवता भवेन भूयस्तरामधिष्ठिता, मात्रा अन्नपूर्णया धनधान्यादिभिः पूर्णताम्प्रापिता, सुलक्षणाऽपि त्रिभुवनविलक्षणा, जीवनानन्ददायिनी अपि पुनर्जन्मापहन्त्री, कौशेयवस्त्रविपुलाऽपि दिगम्बरप्रिया, वाराणसी नाम्नी पुरी परश्शतैर्वर्षैः परां प्रसिद्धिमारूढा विद्योततेतमाम्।

यत्र भक्तजनकामनापरिपूर्त्यर्थम् आशुतोषः, कामादिदुष्टदलनाय कृताऽऽशुरोषः, पुनर्जन्मबन्धनसमापकः, सर्वपापविनाशकः श्रीशङ्करः सदैवात्रास्थितः। इयं नगरी वाराणसी, काशी, आनन्दवनम्, अविमुक्त-क्षेत्रम् एवमादिभिर्नामभिः प्रख्याता शोभते। यथेयमानन्दभूमिस्तथैव वैरागस्य च। अतएव कश्चित् प्रार्थयति भावुको भक्तप्रवरः—

कदा वाराणस्याममरतटिनीरोधसि वसन्
वसानः कौपीनं शिरसि निदधानोऽञ्जलिपुटम् ।
अये ! गौरीनाथ ! त्रिपुरहर ! शम्भो ! पशुपते !
प्रसीदेत्याक्रोशन्निमिषमिव नेष्यामि दिवसान् ॥

अत्र आनन्दस्याऽपि पराकाष्ठा अक्षिलक्ष्यीक्रियते काशीवासिभिः दूरादागतैश्च पुम्भिः । अत्र निवसन्तो जनाः इत्थं कामयन्ते—

'चना चबैना गङ्गजल जो पुरवै करतार ।
काशी कबहुँ न छाँड़िये विश्वनाथ दरबार' ॥ इति ।

इति कस्याऽपि हिन्दीकवेः सूक्तिः । यथात्र गङ्गातरङ्गायिता भवति तथैव शम्भोर्भक्ता भङ्गातरङ्गायिताः सन्तः त्रैलोक्यस्य साम्राज्यमपि तृणवदनुभवन्ति । इतः परं का आनन्दस्य चरमा सीमा ।

काशीवासिनां दिनचर्य्याऽपि अवलोकनीया एव—प्रातरुत्थाय दन्तकाष्ठं मुखे निधाय चर्वयन्तः, उत्तरीयम् अधोवस्त्रं जलपात्रञ्च आदाय गृहेभ्यो गङ्गातीरमवतरन्ति ततः द्वित्राः पञ्चषः वा सखायः नावमारोहन्ति नाविकः नावमादाय यावत् मध्येगङ्गं याति तावदेते भङ्गां निर्माय परस्परं विभज्य गङ्गाजलेन ताम् आचामन्ति तदनु पारम्प्राप्य शौचादिकं कृत्वा वस्त्राणि स्नानीयचूर्णादिभिः ( साबुन ) परिशोध्य तानि नौकाया उपरि प्रसार्य स्नान्ति । ततः परावृत्य भस्मभूषितललाटाः सजलकमण्डलुहस्ताः मन्दिरेषु दर्शनादिकं कुर्वन्तः शनैः शनैः किमपि जपन्तः दशवादनादारभ्य द्वादशवादनं यावत् स्वं स्वं गृहं यान्ति । दैनिकोऽयं क्रमस्तेषाम् । कः अपरत्र एतादृगानन्दं लभेत ।

काश्याः महिमावर्णनात्मकम् कविवरेण्यस्य श्रीहर्षस्य नैषधमहाकाव्यतः पद्यमिदमुद्ध्रियते प्रसङ्गेऽस्मिन्—

वाराणसी निविशते न वसुन्धरायां
तत्र स्थितिर्मखभुजां भुवने निवासः ।
तत्तीर्थमुक्तवपुषामत एव मुक्तिः
स्वर्गात्परं पदमुदेतु मुदेतु कीदृक् ॥

एतद्वर्णनं दमयन्त्याः, स्वयंवरप्रसङ्गमाश्रित्य कृतं विराजते । अयम्भावः—काशीयं साक्षात् स्वर्गलोकः यतोहि अत्र मृतानां मुक्तिर्भवति,

ये तीर्थेषु प्राणांस्त्यजन्ति ते स्वर्गगामिनो भवन्ति न तु मोक्षाऽधिकारिणः। अत एवोक्तं 'काश्यां मरणान्मुक्तिः'। काशीखण्डेऽपि अस्य विस्तृतो महिमा वर्णितोऽस्ति। अन्यत्राऽपि काश्याः मोक्षप्रदत्वं सुप्रसिद्धम्। तद्यथा—

अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः॥

एतासु सप्तनगरीषु अन्यतमत् स्थानं काश्याः। इत्थम्भूतेयं नगरी गरीयसी त्रैलोक्ये, यत्र साक्षात् लोकशङ्करः शङ्करः कृतवसतिर्विराजते। विद्यागुरोः विश्वनाथस्येयं नगरी अत एवाऽत्र सर्वविधविद्यानामावासः। एतस्मादेव कारणाद् अत्र त्रयो विश्वविद्यालया अनेके महाविद्यालयाः असङ्ख्याताः लघुविद्यालयाश्च सन्ति। यथाऽत्र विद्यालयानां बाहुल्यं वर्तते तथैव देवमन्दिराणामपि। त्रयस्त्रिंशत्-कोटिदेवानां मूर्तयः काश्यामेव समुपलभ्यन्ते नाऽन्यत्र।

इयं नगरी व्यापारिकदृष्ट्यापि विश्वविश्रुता वर्तते। अत्र देशविदेशेभ्यः विविधा जना आयान्ति, तेषु प्रथमाः धार्मिकाः, द्वितीयाः विद्यार्थिनः, तृतीयाः व्यापारिणः। धार्मिकेषु पर्यटकाः, दर्शनार्थिनः, मोक्षार्थिनश्च। विद्यार्थिषु सर्वविधविद्याजिज्ञासवः, अनुसन्धातारश्च। व्यापारिषु कौशेय-वस्त्र-काष्ठक्रीडनक-पित्तलपात्रव्यवसायिनश्च सम्मिलिताः सन्ति। व्यापारिणां गतागतिः तु सर्वदा प्रचलत्येव किन्तु मोक्षार्थिनः अत्र आगत्य न परावर्तन्ते। केचन मादृशाः विद्यार्थिनोऽपि पठनानन्तरं लब्धजीविकाः विश्वनाथचरणेषु श्रद्धावद्धावधाना इहैव स्वं सम्पूर्णं कालं गमयन्ति। अन्ते काशीवासिनां भागधेयवर्णनपरमेकमात्मीयं पद्यं प्रस्तौमि—

शम्भोः कटाक्षकलया भवभीतिभङ्गा,
गङ्गातरङ्गकणिका यमनुस्पृशन्ति।
निष्कल्मषः स हि पुमानधिकाशिवासी,
कोऽन्यस्ततो भरतभूमिभवोऽस्ति धन्यः॥

इत्थं काशीनिवासिनो महत्वमुपवर्ण्य काशीमाहात्म्यं पुरस्क्रियते—

अशन-वसनपूर्णा यत्र माताऽन्नपूर्णा,
विलसति सुरगङ्गा यत्र पुण्याऽन्तरङ्गा।

सपदि जपति कर्णे तारकं यत्र शम्भु-
जयति शिवपुरी सा काशिका काऽपि रम्या ॥

प्रसङ्गप्राप्तम् अन्नपूर्णास्तवनमिहोपन्यस्यते—

हिमगिरिवरकन्या सर्वलोकेषु धन्या
सकलजननमस्या भक्तवृन्दप्रशस्या ।
नखशिखतनुकम्रा शर्वसेवासु नम्रा
जयति विभवपूर्णा सर्वदा साऽन्नपूर्णा ॥

## तीर्थराजः प्रयागः

उत्तरप्रदेशस्य मुख्यनगररूपेण तीर्थरूपेण च विराजते तीर्थराजः प्रयागः। अस्याऽपरपर्यायः 'इलाहाबाद' इति । उत्तरप्रदेशे अयोध्या मथुरा हरिद्वारं काशी प्रयागः इत्येतानि पञ्चनगराणि तीर्थरूपेण विख्यातानि सन्ति, एतेषु प्रयागस्य विशिष्टं स्थानं वरीवर्ति। वाराणसीवत् प्रयाग-राजोऽपि तीर्थालयः, विद्यालयः, मोक्षालयः, धार्मिकालयः, धर्मालयः, व्यापारालयश्च वर्तते । अत्रत्य विश्वविद्यालयः काशीहिन्दुविश्वविद्यालयादपि प्राचीनः । अत्र विद्यालयाः महाविद्यालयाश्च सन्त्यनेके, मन्दिराणि अपि बहूनि विलसन्ति ।

प्रयागे एव गङ्गा-यमुना-सरस्वतीनदीनां सङ्गमः सङ्गमाय भवति धार्मिकाणाम् । यद्यपि सरस्वतीनदी नास्त्यत्र प्रत्यक्षा तथाऽपि गङ्गायमु-नयोः सङ्गमस्थाने अन्तर्हिता स्वकीयेन पवित्रतमेन माहात्म्येन विराजत इति शास्त्रसम्मतम् । अतएव एषः सङ्गमः त्रिवेणी, त्रिपथगा च नाम्ना दिक्षु ख्यातिं लभमानो बाभाति । धार्मिकदृष्ट्या केनाऽपि कविवरेण निम्नलिखितेऽस्मिन् पद्येऽस्य समीचीनं चित्रणं कृतं दृश्यते । तदत्र समुदाह्रियते—

सिताऽसिते यत्र तरङ्गचामरैर्नद्यो विभाते मणिभानुर्काणिके ।
लीलातपत्रं वट एव साक्षात् स तीर्थराजो जयति प्रयागः ॥

सुस्पष्टमेव । अत्र प्रत्यब्दं माघमासे स्नानार्थिनां महान् सम्मर्दः भवति मकरसंक्रान्तौ अमावास्यायां चन्द्रग्रहणोपरागेषु, विशेषतः कुम्भपर्वणि

नानादिग्देशाऽऽगताः जनाः साधवः च अत्र सम्भूय संयमेन धार्मिकबुद्ध्या च कालं गमयन्तः तेषु तेषु पर्वसु सङ्गमस्नानजं पुण्यं लभन्ते ।

प्रत्येकस्मिन् द्वादशे वर्षे पूर्णकुम्भपर्वं तथा षड्वर्षानन्तरम् अर्धकुम्भजं पर्व माघे मासि तीर्थराजप्रयागे मान्यते पवित्रान्तःकरणैः पुम्भिः । तदा पौषमासतः एव तीर्थपुरोहिताः, राजकीयाधिकारिणः, नगरमहापालिकायाः शासकाः, राजपुरुषाश्च तीर्थयात्रिणां निवासस्य, स्नानस्य, गमनागमनस्य, यानादीनां, सुरक्षायाः, चिकित्सायाः, पत्रालयाणां, भोजनस्य, अन्नादिकस्य च व्यवस्थाव्यापृतचेतसो दृश्यन्ते । अस्मिन् पर्वणि धार्मिकभावनया प्रेरितान्तःकरणाः कल्पवासं एकाऽऽहारेण द्विःस्नानादिधर्मानुष्ठानैः समाचरन्ति । एतदवसरे शिशिरर्तुजन्यं शीताऽऽधिक्यं सर्वान् स्वभावादेव कम्पयति तथाऽपि कल्पवासिनः ( मासमात्रनिवासिनः ) तत्रस्थपर्णकुटीषु नोद्विजन्ते ।

तदानीमत्र सर्वविधसम्प्रदायजुषः साधवः समवेताः भवन्ति । केचिन्नग्नाः, कतिपये काषायवस्त्रधारिणः, अपरे हठयोगपरायणाः, तेषु कश्चन एकपादस्थः, कोऽपि ऊर्ध्वबाहुः, अपरो मौनी, इतरः बद्धपद्मासनः, इत्थं विविधाः स्वरूपास्तेषां दृष्टिपथमायान्ति । एतेषां विषये महर्षिणा चाणक्येन निगदितमस्ति यत्—

साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थभूता हि साधवः ।
तीर्थः फलति कालेन सद्यः साधुसमागमः ॥

अयमत्र सहजो लाभः यत् तीर्थस्नानजं साधुदर्शनजं च फलम् एककालावच्छिन्नतया जनैः प्राप्यते । स्नानपर्वसु सुरक्षाधिकारिणः नौकाभिः पादचारैः वा स्नानार्थिनां रक्षार्थं बद्धपरिकराः इतस्ततः सावधानाः सन्तो भ्रमन्ति ।

प्रयागे एव नीरक्षीरविवेककुशलः शोभते उत्तरप्रदेशीयः उच्चन्यायालयः । न्यायालयव्याजेनाऽपि गताः धर्मधुरीणाः अत्र स्नानादिकं कुर्वन्त्येव । अत्रैव उच्चतरमाध्यमिकशिक्षायाः प्रधानः कार्यालयो विलसति । इयमपरा विशेषता अस्य तीर्थस्य यद् भूतले यावन्ति तीर्थानि सन्ति तानि केवलं तीर्थपदेन व्यवह्रियन्ते । केवलं प्रयागस्यैव भागधेयानि सन्ति यत् सः तीर्थराजपदमुच्चैर्बिभर्ति ।

अत्र तीर्थंपुरोहितानां व्यवस्थया दूरदेशागताः स्नानार्थिनः स्वकीयगृहवद् आश्रयं लभन्ते। एतेषां वंशाग्रभागावलम्बिध्वजचिन्हानि अपि अपूर्वा शोभां पुष्णन्ति। त्रिवेणीसङ्गमतटनिकटे एकं प्राचीनं दुर्गमस्ति तदपि प्राचीनकाले कथं सेनासन्निवेशः क्रियतेस्म इतीदं नूनं दर्शनीयम्। सर्वप्रकारेण नगरमिदं राजमार्गैः चतुष्पथैः राजकीयविवधकार्यालयादिभिः च सुसम्पन्नम् अतएव दर्शनार्हम्। किमधिकं वच्मः नगरस्यास्य भागधेयानि वर्णयितुं चतुराननोऽपि स्वम् अचतुराननोऽहमिति अनुभवति। एतत्सम्बन्धि स्वकीयं पद्यं प्रस्तूय विरमामि—

यत्र रागो विरागो वा प्राप्यते धीर्धनं पृथु।
तीर्थराजप्रयागोऽसौ भूस्वर्गो महिमालयः॥



## श्रीकृष्णजन्माष्टमी

द्वापरे युगे आकाशवाणीविभीषितेन उग्रसेनात्मजेन कंसेन विवाहानन्तरमेव देवकीवसुदेवौ कारागारे निगडितौ। तत्र तयोः अनेकासु सन्ततिषु अष्टमः श्रीकृष्णः सम्बभूव। अयं हि भगवतो विष्णोर्लीलावतारः भाद्रपदे मासि कृष्णे पक्षे अष्टम्यान्तिथौ रोहिणीनक्षत्रे निशीथे देवक्याः कुक्षितः जन्म लेभे। तदानीं देवकीवसुदेवौ तं निर्निमेषपक्ष्मणा ददर्शतुः। कथम्भूतः स आसादिति वर्णयन् बादरायणिः श्रीमद्भागते दशमस्कन्धे पूर्वार्धे तृतीयाऽध्याये जगाद—

तमद्भुतं बालकमम्बुजेक्षणं चतुर्भुजं शङ्खगदार्युदायुधम्।
श्रीवत्सपद्मं गलशोभिकौस्तुभं पीताम्बरं सान्द्रपयोदसौभगम्॥
महार्हवैडूर्यकिरीटकुण्डलत्विषापरिष्वक्तसहस्रकुन्तलम्।
उद्दामकाञ्च्यङ्गदकङ्कणादिभिर्विरोचमानं वसुदेव ऐक्षत॥

अमुष्य बालकस्य साक्षाद् भगवतः स्वरूपमवलोक्य तौ दम्पती भृशं चिन्तातुरौ बभूवतुः, प्रार्थयामासतुश्च, नृशंसेन कंसेन भवतः सर्वे भ्रातरो हिंसिता इति। अतः भगवन्—

उपसंहर विश्वात्मन्नदो रूपमलौकिकम्।
शङ्खचक्रगदापद्मश्रिया जुष्टं चतुर्भुजम्॥

इत्थं प्रार्थनापरौ जननीजनकौ वीक्ष्य तयोः पूर्वजन्मवृत्तं संस्मारयन् भगवानुवाच—

त्वमेव पूर्वसर्गेऽभूः पृश्निः स्वायम्भुवे सति।
तदायं सुतपा नाम प्रजापतिरकल्मषः॥

तदनु पुनः निर्दिशति बालकृष्णः—भवद्भ्यां दिव्यवर्षसहस्राणि यावत् तपः तप्त्वा अहं परितोषितः। यदाहं प्रसन्नो बभूव तदा भवद्भ्यां प्रार्थितः, यदि भवान् प्रसन्नः तदा अनेन एव वपुषा भवन्तं पुत्ररूपेण द्रष्टुकामौ आवाम्। अतएव—

एतद् वां दर्शितं रूपं प्राग्जन्मस्मरणाय मे।
नान्यथा मद्भवं ज्ञानं मर्त्यलिङ्गेन जायते॥
इत्युक्त्वाऽऽसीद्धरिस्तूष्णीं भगवानात्ममायया।
पित्रोः सम्पश्यतोः सद्यो बभूव प्राकृतः शिशुः॥

तदनु मुक्तनिगडेन वसुदेवेन सूर्पमध्यस्थापितो बालकृष्णः मथुरायां नन्दसद्मनि प्रापितः। तत्र यशोदाशयने तं बालं संस्थाप्य तदानीमेव जातां तदीयां कन्यकाम् आदाय सः पुनर्गृहानगात्। गृहमागत्य—

देवक्या शयने न्यस्य वसुदेवोऽथ दारिकाम्।
प्रतिमुच्य पदोर्लोहमास्ते पूर्ववदावृतः॥

तदनन्तरं बालिकाया रोदनमाकर्ण्य द्वारपालाः समुत्थिताः। तैः कंसः सूचितः। कृतान्तोपमो नृशंसः मुक्तमूर्धजः कंसः पदे पदे प्रस्खलन् खड्गहस्तो रोषरूक्षेक्षणः अस्मादेव गर्भान्मम वधः सुनिश्चित इति चिन्ताऽऽतङ्कितमानसः शुष्कताल्वौष्ठः यावत्तत्रागत्य पश्यति तावत् देवक्या शयने शयानां बालिकामेकाम् अवलोकयामास। तामादाय यावद् हन्तुमियेष तावत् सा तस्य हस्ताद् विमुच्य आकाशम्प्राप्य निगदति—रे रे दुष्ट! तवान्तकः समुत्पन्नः किं मम वधेन तव, इति नभश्चरां गिरमाकर्ण्य स भृशं चुकोप। निराशो भग्नमनोरथः स्वकीयं राजसदनम्प्राप्य सर्वान् सचिवानाहूय तदखिलं वृत्तं श्रावयामास। दुर्मन्त्रिभिः प्रेरितः सन् नवजातशिशूनां वधाय पूतनाप्रभृतिगणान् प्रेषयामास। ते सर्वे श्रीकृष्णेन लीलया एव हताः। अन्ते कंसश्च पञ्चत्वं प्रापितः।

तत्पश्चात् कंसेन निगडितं स्वकीयं मातामहम् उग्रसेनं ततः उन्मुच्य राज्ये अभिषिक्तं चकार श्रीकृष्णः। एतस्य राज्ये प्रजा कामं सुखिनी

वभूव। तदनन्तरं श्रीकृष्णः द्वारिकामगच्छत्। एकस्मिन् दिवसे तस्य बालसखा सुदामा पत्न्या प्रेरितः द्वारिकां प्राप। तत्र प्राप्य श्रीकृष्णस्य राजधान्याः अलौकिकं वैभवमालोक्य चकितचकितः सुदामा द्वारपालमुवाच, सोऽपि श्रीकृष्णं न्यवेदयत्। श्रवणसमकालमेव स तत्रागत्य सुदामानं हस्ते धृत्वा सिंहासनान्तिकमानीय सादरम् आसनदानपुरःसरं तं सपत्नीकः पूजयामास। तदीयतण्डुलकणान् भक्षयित्वा तमतुलसम्पदा सनाथीकृतवान्। स च मोदमानमानसः गृहम्प्राप्य श्रीकृष्णप्रदत्तं वैभवं दृष्ट्वा आश्चर्यचकितोऽभवत्।

महाभारतयुद्धस्य सूत्रधारः गोवर्द्धनोद्धारकः पार्थाय गीताया उपदेशकोऽपि श्रीकृष्ण एव नान्यः। राधिकाराधितः नवनीतचौरः, दुकूलचौरः, अनेकजन्मार्जितपापचौरः अपि आनन्दकन्दो नन्दनन्दनः श्रीकृष्णः एष एव। अस्तु तावत् प्रकृतमुपसरामः।

अयं श्रीकृष्णजन्माष्टमीमहोत्सवः प्रत्यब्दं महता समारोहेण क्रियते, एतस्य किं महत्वमिति विद्वद्भिर्विचारणीयम्। मानवाः घोरे स्वार्थान्धकारे निद्रानिलीना इव न किमपि कुत्राऽपि ध्यानं ददति। एतदर्थमेव श्रीकृष्णस्य जन्म भाद्रपदमासस्य मेघमेदुरायां रात्रौ तत्राऽपि निशीथे वभूव, तदा सर्वेऽपि निद्रां विहाय जागृता भवन्ति। एतस्यायमभिप्रायो यत् सुप्तमानवजागरणाय, अलसेभ्यः 'कर्मण्येवाऽधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन' इत्याद्युपदेशाय, दुष्टाः दुष्टतां विहाय सज्जनतामाश्रयेयुः अन्यथा तेषां वधाय स्वयमहम् उत्पत्स्यामि, इति सूचनाय च भवति।

अस्माकं परमं कर्तव्यमस्ति यद् वयं प्रत्यब्दं श्रीकृष्णजन्माष्टमीदिने कर्मयोगाश्रयणाय प्रतिज्ञां कुर्याम, यया आध्यात्मिकी आधिभौतिकी च सिद्धिः अस्माकं करतलस्था भवेत्। पर्यन्ते श्रीकृष्णनमनपुरःसरं निबन्धोऽयमुपसंह्रियते—

मौलौ वर्हजुषे मनोज्ञवपुषे पद्मोल्लसच्चक्षुषे
कालीयाहिरुषे सलीलजनुषे नव्याम्बुवाहत्विषे।
गोपीतोषपुषे पयोदधिमुषे नीपाग्रमासेदुषे
जिष्णोः सख्यमुपेयुषे प्रणतयः कृष्णाय कंसद्विषे॥

# विजयादशमी

अभिज्ञानशाकुन्तले नाटके कालिदासस्येयं सूक्तिः परां प्रसिद्धिं प्राप, यद् 'उत्सवप्रिया मानवाः' इति। यद्यपि सार्वत्रिकैः पुरुषैः उत्सवाः क्रियन्ते किन्तु तेषु भारतीयोत्सवानां वर्त्तते विशिष्ट महत्वम्। वर्णव्यवस्थानुसारम् अत्र चत्वारः सुप्रसिद्धाः उत्सवाः प्रचलिताः दृश्यन्ते। ब्राह्मणानाम् उपाकर्मदिवसः श्रावणी, क्षत्रियाणां विजयादशमी, वैश्यानां व्यापारकर्मसिद्धिदा लक्ष्मीपूजनप्रधाना दीपमालिका तथा शूद्राणां होलिकोत्सवः।

कथं विजयादशमी उत्सवः क्षत्रियाणामेव इति पृच्छ्यते चेत् तत् समाधीयते। यतोहि अस्मिन् दिवसे क्षत्रिया राजानः प्रवर्त्तन्ते स्म दिग्विजययात्रायै। अत्रेदं रहस्यम्—विशिष्टो जयः विजयः तस्मै या दशमी सा विजयादशमीति निगदिता पूर्वैः सूरिभिः। इमाः पदावलीः कालिदास-इत्थं समर्थयति—

सरितः कुर्वती गाधाः पथश्चाश्यानकर्दमान्।
यात्रायै चोदयामास तं शक्तेः प्रथमं शरत्॥

शरदृतौ एव विजयादशम्याः सम्भवः। अतः सः कीदृक्कालो भवतीति विवृण्वन् कालिदासः कथयति। तदानीं सरितः तर्तुं योग्याः, पन्थानः च शुष्कपङ्कवन्तः, अतएवोत्साहशक्तेः प्रभावातिशयात् सा शरद् रघुवंशतिलकं रघुं दिग्विजययात्रायै प्रेरयतिस्म। इतः पूर्वं वर्षासु कर्दमकलुषितमार्गत्वाद् धारासम्पातमन्दोत्साहकारणाच्च वाल्मीकिरपि कथयत–'स्थिता हि यात्रा वसुधाधिपानाम्'।

वर्षासमाप्तेरनन्तरमेव कालक्रमेण शरदागमो भवति। तदानीं दिशः प्रसन्नाः स्वच्छ आकाशः, पयांसि अनाविलानि, नद्यः कृशोदर्यः कापि कमनीयां कान्तिं कलयन्ति, समशीतोष्णकालत्वाच्चायमवसरः विजयैषिणां प्रेरणाप्रदः सफलतादायकश्च भवति।

ज्यौतिषसिद्धान्तानुसारेण आश्विनशुक्लपक्षस्य दशम्याः दिने सूर्योदयात् पूर्ववर्तिकालः 'विजय' संज्ञकः कथितः। तदानीं प्रारब्धा यात्रा विजयाय भवति। एतदवसरे यत् दुर्गापूजनमपि क्रियते तस्या अपि इदमेव कारण मस्ति। शुम्भाद्यसुरभयभीतदेवप्रार्थनया दुर्गतिनाशिनी भगवती

दुर्गा विजयदशम्या दिने एव आविर्बभूव किल । प्राचीनकाले अस्मिन् दिने विजययात्रार्थं प्रवृत्ता राजानो गजान् अश्वान् रथान् पदातीन् अलङ्कृत्य स्वयमपि विविधैरलङ्कारैरलङ्कृता भवन्तिस्म । तदनु वाद्यानि वादयन्तः, गीतानि गायन्तः, ध्वजाः समुत्तोलयन्तः, ब्राह्मणानां वृद्धपरिजनानाञ्च शुभाशिषः शिरसा अङ्गीकुर्वन्तः ते प्रस्थानं कुर्वन्तिस्म ।

अस्मिन् पर्वणि ग्रामे ग्रामे, नगरे नगरे, रामलीला आयोज्यन्ते । श्रीरामचन्द्रस्य जन्मनः प्रभृति रावणवधपर्यन्तमेव दृश्याणाम् अभिनयः क्रियते तत्र तत्र, दशम्याः दिने रावणवधं प्रदर्श्य तस्य पुत्तलिकां निर्माय तां दाहयन्ति । अस्मिन्नवसरे काश्यां बहुत्र रामलीलोत्सवः क्रियते विभिन्न-संस्थासञ्चालकैः एतेषु सर्वेषु प्रधानतमम् आयोजनं काशीनरेशद्वारा रामनगरस्थाने समायोज्यते, यत्र परश्शताः दर्शनार्थिनः प्रतिदिनं यान्ति दर्शनार्थम् ।

इयं रामलीला सर्वान् मानवान् रामस्यादर्शजीवनस्य शिक्षया प्रत्यब्दं प्रभावितान् करोति । कथं मानवेन मानवैः सह वर्तितव्यं कथञ्च पारि-वारिकैः सह व्यवहर्तव्यम् । 'स्त्रीवुद्धिः प्रलयङ्करी' इत्यपि निर्देशः अत्र प्राप्यते । यदि नाम राजा दशरथः कैकेयीवाक्यं नाभिनन्देत् तर्हि कथं वनवासः सम्भवेत् । दशरथस्य मृत्युरपि आदर्शभूतः यः सत्यस्य रक्षायै राज्यं, परिवारान्, प्राणप्रियं पुत्रं किञ्च प्राणानपि तत्याज । भरतस्योदार-भावनाः कः विस्मरिष्यति । लक्ष्मणस्य त्यागः, सीतायाः सतीत्वं, रामस्य साहसं, विभीषणस्यात्मसमर्पणम् महता परिवारेण प्रावृतस्याऽपि रावणस्य दुर्दशा, एतत्सर्वमस्मान् शिक्षयति साधुतां, विस्मारयति दुष्टताम्, उपदिशति भ्रातृप्रेम, निर्दिशति त्यागभावनाः, प्रेरयति भगवच्चरणशरणरमणाय ।

अद्य सर्वे उत्सवाः मद्यपानव्यसनिभिः दूषिताः, तस्करैः कलङ्किताः, नृशंसैः हिंसिताः । इत्यादीनि कलङ्कपङ्कमलिनानि दूषणानि परिहृत्य यदि जनाः सद्भावनापरिपूरितान्तःकरणाः समेषाम् उत्सवानां सोल्लासं परिसमाप्तिं कुर्युश्चेत् तदा सर्वत्र सर्वेषां विजय एव दृष्टिगोचरतां यास्यति । अयमेव विजयादशम्याः सन्देशः । यथोक्तं निबन्धकृता—

जयाय सर्वलोकस्य भूभृतां विजयाय च ।
आश्विनस्य सिते पक्षे दशम्येषा विराजते ॥



# दीपमालिका

दीपानां मालिका, आवलिः वा दीपमालिका, दीपावलिः च इत्यनर्थान्तरम्। उत्सवोऽयं भारतीयजनतासु सुप्रसिद्धः प्रतिवर्षं कार्तिककृष्णामावास्यायां सहर्षं मान्यते। एष उत्सवः विजयादशम्याः विंशतितमे दिवसे प्रायो भवति। अयमपि शारदोत्सव एव। नायमेकलः उत्सवः, अस्य दिनद्वयपूर्वादेव उत्सवानां क्रमः प्रचलति तथा दिनद्वयस्य पश्चात् समाप्तिम्प्रयाति।

एतेषाम् उत्सवानां क्रमेण नामोल्लेखः क्रियते। तद्यथा—धन्वन्तरित्रयोदशी, हनुमज्जन्म, दीपमालिका, अन्नकूटम्, भ्रातृद्वितीया च, एभिः समुपवर्धितोऽयं दीपमालिकोत्सवः अधिकोल्लासप्रदत्वेन समधिकां प्रसिद्धिं गतः। क्रमप्राप्तानामेतेषां किञ्चिद्वर्णनमिहोपन्यस्यते।

धन्वन्तरित्रयोदशी चिकित्सकवर्गस्य प्रमुखोऽयमुत्सवः। यतो हि अद्य दिने समुद्रमन्थनाद् भगवतो धन्वतरेरवतारो बभूव किल। चतुर्दश्यान्तिथौ शिवावतारत्वेन प्रथितस्य हनुमतो जन्मदिवसः। अद्य तद्भक्ताः श्रद्धाभक्तियुतास्तमर्चयन्ति। एषा चतुर्दशी नरकचतुर्दशी नाम्नाऽपि विख्याता। दीपमालिकायाः विस्तृतं वर्णनम् अधस्ताद्भविता। अन्नकूटदिने प्रातः अभ्यङ्गस्नानं, नवीनवस्त्रधारणं, गोवर्धनपूजनं, गोक्रीडा, अपराह्णे यष्टिकाकर्षणं, सायं नारीकर्तृकनीराजनञ्च, भवति। भ्रातृद्वितीयायाम्-यमुनास्नानं चित्रगुप्तपूजनं, यमधर्मेश्वरार्चनं, यमायार्घ्यप्रदानं, यमतर्पणं भगिनीगृहे भोजनञ्च। इतःपरं दीपमालिकादिवसकृत्यमुपवर्ण्यते।

अस्मिन् पर्वणि वैश्याः वणिग्वृत्त्याऽऽजीविनः अन्ये च गृहस्थाः स्वानि स्वानि गृहाणि सम्मार्ज्य, सुधया विलिप्य, स्वञ्च अभिनववस्त्रालङ्करणादिभिरलङ्कृत्य, पूजास्थानं गृहञ्च परितः घृतदीपैः तैलदीपैः, मधूच्छिष्टवर्तिकाभिः (मोमबत्तियों से), विद्युद्दीपैश्च आलोकितीकृत्य धनधान्यादिसमस्तैश्वर्यप्रदायिनीं महालक्ष्मीदेवीं सर्वसम्भवोपचारैः सम्पूजयन्ति। तदनु अर्धरात्रौ लीलाकालीजन्ममहोत्सवः, महाकालीपूजनञ्च क्रियते। शेषरात्रौ दरिद्रनिस्सारणञ्च विधीयते। अद्य मान्त्रिकाः मन्त्रोपदेशमपि कुर्वन्ति भक्तेभ्यः।

अत्र महोत्सवस्यास्य ऐतिहासिकस्वरूपमुपवर्ण्यते लोकोक्तिसहकारेण । इत्थं श्रूयते यद् भगवान् रामचन्द्रः चतुर्दशवर्षवनवासानन्तरं त्रैलोक्य-विद्रावणं रावणं विनिहत्य अद्यैव स्वकीयां राजधानीम् अयोध्याम्प्रत्या-जगाम । तदानीं तद्दर्शनोत्सुकैः नागरिकैः गृहाणि, उद्यानानि, मन्दिराणि, गोस्थानकानि, वाजिशालाः, मार्गाः, राजमार्गाः, चतुष्पथाः, दीपालोकैः सर्वत आलोकिताः कृताः, पुष्पाणि विकीर्णानि, बहुविधानि मिष्टान्नानि वितरितानि ब्राह्मणेभ्यो, दीनेभ्यो, याचकेभ्यो दानानि च दत्तानि । एतदस्या-ध्यात्मिकं स्वरूपम् । स्वास्थ्यसम्पादनस्यापि अयम्प्रतिनिधिः । तद्यथा—वर्षाकालजनितक्लिन्नतयोत्पन्नाः कीटमशकादयोऽपि अवसरेऽस्मिन् सपदि दीपप्रकाशेषु भस्मतामुपयान्ति । इदानीं वार्षिकसस्येष्टिमवलोक्य कृषकमनो-मयूरो मोदमापन्नः सुतरां नरीनर्ति ।

प्रायो जनाः दीपमालिकायां द्यूतक्रीडां कुर्वन्तो दृश्यन्ते । 'प्रातर्गो-वर्धनं पूज्यं रात्रौ द्यूतं समाचरेत्' । अर्थात् दीपमालिकायां रात्रौ द्यूतक्रीडां विधाय प्रातर्गोवर्धनपूजा विधीयत इति परम्परा किन्तु अद्य द्यूतक्रीडा धन-वञ्चनाय न कर्तव्या । द्यूतक्रीडासु अनुरक्ताः जनाः कथयन्ति शास्त्र-प्रमाणमिदं यत् 'तस्मिन् द्यूते जयो यस्य तस्य संवत्सरं जयः' ।

नैषा विश्वासयोग्या क्रिया । अनया एव पाण्डवाः पराभवं प्राप्ताः । राजा नलो राज्येन दमयन्त्या च वियुक्तः । अन्याः अपि सङ्ख्यातीता दुर्घटना द्यूतक्रीडातः सम्भवन्ति । तथाऽपि दुर्विनीता एनामाश्रयन्त्येव । एष दुर्व्यवहारः सर्वैः सहसा परित्याज्यः । अयमेव महाप्रयाणदिवसः स्वामिनो महर्षिवर्य्यस्य दयानन्दस्य ।

एतदवसरे रामायणस्य प्रवचनं, श्रवणं, कीर्तनं, महालक्ष्म्याः पूजनं, स्वास्थ्यसम्पादनञ्च यथाशक्ति सर्वैः कर्तव्यम् । इदमेव उत्सवस्याऽस्य सत्फलम् । सङ्क्षेपेण तदेवोपसंह्रियते ग्रन्थकर्त्रा—

दीपप्रभाभासितसर्वरात्रौ
दर्शोऽपि राकातुलनां बिभर्ति ।
यदुत्सवे मोदयुताः समस्ताः
सा दीपमाला द्युसदामलभ्या ॥

## होलिकोत्सवः, वसन्तः

भारतीयानाम् उत्सवानां विभागाः प्रायो ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र-परका इति निश्चीयन्ते व्यवहारतः। तेषु होलिकोत्सवः शूद्राणामिति सर्वैः स्वीकृतमेव। प्रस्तुतेऽस्मिन् प्रस्तावे होलिकायाः सम्बन्धे किमपि विचार्यते। उत्सवोऽयं परस्परोच्च-नीच-भेदभावना-दूरीकरणाय एव समायोज्यत इति विश्वासः सर्वेषाम्।

मधुमाधवौ वसन्तः। अस्मिन्नेव ऋतौ होलिकोत्सवः सम्मान्यते। इदानीं प्रकृतिनटी रमणीयभावभरिता सर्वाभरणभूषिता, उद्यद्यौवना. सुखस्पर्शवती, सुगन्धिचयसमृद्धा, विकसितसर्वावयवा, आनन्दोदयप्रवणा, अलिशुकपिकमुखरा, हंससारसकूजननूपुरा, वसुन्धरारङ्गमञ्चमारुह्य नृत्यन्ती कामपि सुषमां समेधयति सरसान्तःकरणपटलेषु। एतदेवावसरे गृहारामेषु, वनेषु वाटिकासु, वापीषु सरसीषु, क्षेत्रेषु, च विकसितसुकुमामोदमुपलभ्य भ्रमरीसमूहपरिवृतः चपलश्चञ्चरीकपटलः पुष्पात् पुष्पं स्पृशन् तदा. स्वादसौख्यमेदुरमनाः सम्पूर्णमपि दिवसं क्षण इव मन्यमानः गमयति। सर्षपकुसुमसमृद्धा सुमती वसुमती पीतकौशेयशाटिकां वसाना सीमन्तिनीव लोकोत्तरां शोभामावहति। अस्मिन्नेव अमन्दानन्दसन्दोहमेदुरे पुष्पसमये वीतरागा अपि सरागा भवन्ति, मूका वाचलतां यान्ति, अविवेकिनोऽपि विवेकतामाश्रयन्ति। यथोक्तं केनापि सुकविना—

काकः कृष्णः पिकः कृष्णः को भेदः पिककाकयोः।
वसन्ते समुपायाते काकः काकः पिकः पिकः॥

इत्यनेनास्य विवेकित्वं प्रकटीभवति। यथा पूर्वोक्तमस्ति यदस्मिन् एव ऋतौ होलिकोत्सवः अपि भवति। अत्रावसरे मूर्खाः, अशिक्षिता, असभ्याः, दुराचारिणः अश्लीलैर्लिङ्गभगाङ्कितशब्दैः लज्जयन्ति कुलीनान्, गालिदानैः क्लेशयन्ति सज्जनान्, नील्यादिरागप्रयोगैः सुरूपानपि कुरूपानाचरन्ति, अशिष्टव्यवहारैः पीडयन्ति सरलस्वभावान्। अन्यदपि बहुविधम् अकाण्डताण्डवं क्रियतेऽस्मिन्नवसरे लब्धावसरैर्दुराचारिभिः। इत्येतद् विलोक्य शान्तमपि मानसं क्षुभ्यति सामाजिकानाम्।

एतस्योत्सवस्य सम्बन्धिनी एका सुप्रसिद्धा कथा प्रस्तूयतेऽत्र—हिरण्यकशिपोः भगिनी होलिका भ्रातृतोषाय स्वभ्रातृजं प्रह्लादम् अङ्के निधाय

माम् अग्निः दाहयितुं न प्रभवति, इति विचार्य सगर्वं वह्नौ प्रविष्टा भगवत्कृपया होलिका भस्मसाज्जाता, बालकः प्रह्लादः दीप्ताङ्गारेषु क्रीडन् अप्लुष्टदेहः सुखेनासीत्। दृढप्रतिज्ञः प्रह्लादः स्वकीयसत्याग्रहे सफलो जातः। अनेन चरित्रेण एषा शिक्षा प्राप्ता भवति यद्—'न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः'। अत एव ते न चिरात् सफलाः सञ्जायन्ते।

अस्मिन् पर्वणि पुरा याज्ञिकैः यज्ञा अनुष्ठीयन्तेस्म तत्स्थाने साम्प्रतं केवलं काष्ठानि इतस्ततः संहृत्य दाहयन्ति जनाः। एतत्तस्य विकृतं स्वरूपम्। फाल्गुनशुक्लपक्षस्य पूर्णिमायां तिथौ भद्रापुच्छे होलिकादाहः कर्तव्य-इति एष शास्त्रीयो विधिः। तदनु प्रतिपत्तिथौ प्रातः रङ्गखेलनार्थं जनकदम्बा आयान्ति, परस्परं स्नेहेन मिलन्ति, गायन्ति, क्रीडन्ति, कूर्दन्ति, नृत्यन्ति, उच्छलन्ति च। मध्याह्ने स्नानादिकं विधाय पूर्वकृतरागद्वेषादिकं नीचोच्चभावनाः च परित्यज्य सर्वे परस्परं गले मिलन्तः अबीरादिलेपनं मिष्टान्नवितरणञ्च कुर्वन्ति। अयमुत्सवः स्पृश्यास्पृश्यस्य नीचोच्चभावनायाश्च समापनाय एव आविष्कृत इति मन्ये। एषा स्पृश्यास्पृश्यभावना राष्ट्रियप्रगतिपथे बाधारूपेण पुरः पतति। अत इदं निश्चीयते यद् होलिकाया उत्सवः अस्पृश्योद्धारायैव शास्त्रकारैराविष्कृतः। अतः एतस्य गालिदानादिकुकृत्यैः दुरुपयोगो न कर्तव्यः। अयमुत्सवः जनरञ्जनाय मनोरञ्जनाय च समुद्भूत इति सर्वसम्मतम्। अतएवोक्तं निबन्धकृता—

लौकिकव्यवहारज्ञैर्वसन्ते होलिकोत्सवः।
नीचोच्चभावनादोष-विघाताय प्रकल्पितः॥



## स्वतन्त्रतादिवसः

यथा सम्पूर्णे वर्षे बहुविधाः उत्सवाः भवन्ति तथैव अयं 'स्वतन्त्रतादिवसः', अपि अदम्योत्साहवतां, भारतभूमिनिवासिनां, नेतृवर्य्याणां च प्रयत्नशतैः प्रसूतः कोऽप्यभिनवः उत्सवोऽस्ति। अस्य जन्म १९४७ ख्रिष्टीयाब्दस्य अगस्तमासस्य १५ तारिकायां समभवत्। अयं भारतीयेतिहासे स्वर्णिमो दिवसः सर्वैरेकमतेन स्वीकृतः। एतस्मिन् दिवसे भारतः

चिरकालिकपरतन्त्रतापाशान्मुक्तः। भारतीयैः सह भारतवसुन्धरापि सुखिनी सञ्जाता। एष १५ अगस्तदिवसः, अस्माकं भारतीयानां त्यागस्य तपसः पुण्यस्य च परिचायकोऽस्ति यैः स्वकीयराष्ट्रस्य स्वतन्त्रतायै समस्तानाम् ऐहलौकिकसुखानां परित्यागो विहितः।

इतः पूर्वं भारतीयैः परचक्रोद्भवानि वाङ्मनसोऽतीतानि कष्टानि सोढानि, सङ्ख्यातीताः मातरः पुत्रशोकेन सोरस्ताडं व्याकुलीभूय अकाले एव कालेन कवलीकृताः। भारतीयवीरैः सोत्साहं देशस्वतन्त्रतायै प्राणास्तृणवद् आहुतीकृताः। तस्यैतत् फलमस्ति यदद्य देशः सर्वथा स्वतन्त्रः यः कश्चिदपि अत्र आक्रमितुमभिलषति स एव पराजयं प्राप्य इतः पलायते। यः प्रथम-प्रथमः स्वतन्त्रतादिवस आसीत् तस्य आयोजनाय चतुर्दशतारिकात एव देशकर्णधारैः स्थाने-स्थाने कदलीवृक्षैः द्वाराणि निर्मापितानि राजमार्गस्य उभयतः तोरणानि रचितानि। तेषु सुसज्जितेषु द्वारेषु, गान्धीद्वारम्, जवाहरद्वारम्, सुभाषद्वारम्, आजादद्वारम्, भारतमातुः द्वारम् देशभक्तद्वारम्, स्वतन्त्रताद्वारम्, इत्यादिपदानि लिखितान्यासन्। यैः जनतायाः मनोबलं वर्धयद् अनुमोयतेस्म। स्थाने स्थाने भारतीयध्वजस्य अपूर्वा एव शोभा आसीत्। ग्रामीणैः नागरिकैः अपि स्वानि स्वानि गृहाणि, वाटिकाः वाप्यः सुसज्जिताः कृताः। एतद्दिने रात्रौ द्वादशवादनसमये शङ्खघण्टाध्वनिभिः स्वतन्त्रतादेव्याः आवाहनादिकं कृतम्, कीर्तनानि आयोजितानि, रामायणकथा प्रारब्धा, गीतापि गीता, सर्वतः जय-जयेति शब्दस्य गगनचुम्बिसमुद्घोषः मुखरितः, विस्तृतश्च चतुर्षु दिक्षु।

अगस्तमासस्य पञ्चदशे दिवसे प्रातःकालादेव जनसमूहः सर्वतः आगत्य प्रातर्भ्रमणाय तत्परोऽभवत् भारतस्वतन्त्रतासम्बन्धीनि गीतानि तारस्वरेण गायन्तो जनाः आनन्दनिर्भरा अभवन्। मध्ये मध्ये महात्मनो गान्धिनः, भारतमातुः, राष्ट्रियध्वजस्य, सुभाषचन्द्रबोसमहोदयस्य, नेहरूमहोदयस्य जयजयध्वनिमपि कुर्वन्ति स्म। इत्थं जय-जय-शब्दोच्चारणमुखरो, राष्ट्रियध्वजगानपरः समाजः प्रेरित इव, मदमत्त इव, आविष्ट इव परितो दृश्यते स्म। एतादृग् उत्साहः न क्वापि प्राग् दृष्टिपथमायातः। तद्दिने प्रभातभ्रमणानन्तरं सार्धदशवादनवेलायां राष्ट्रियध्वजोत्तोलनमकारि तदानीन्तनैः अधिकारिभिः। तद्दिने सर्वेषां गृहाणि

राष्ट्रियध्वजविभूषितानि समभूवन् । अस्मिन्नवसरे बालाः, बालिकाः, युवानः, युवतयः, वृद्धाश्च द्विगुणेनोत्साहेन परिपूरिताः तथा समवेताः सञ्जाताः यथा गोप्यः रासलीलायाम् । तदनन्तरं मिष्टान्नवितरणस्यायोजनमप्यभवत् । भिक्षुकेभ्यो, दीनेभ्योऽनाथेभ्यो भोजनवस्त्रादिवितरणं स्वतन्त्रतादिवसस्य पवित्रे पर्वणि विहितम् ।

तत्पश्चात् सायं समये सार्वजनिकसभा आयोजिताः । वक्तृभिः देशभक्तिभावनासमृद्धैः भाषणैः जनता सम्बोधिता । सर्वेभ्यः दिवङ्गतमहापुरुषेभ्यः श्रद्धाञ्जलयः समर्पिताः येषां प्रयत्नैः देशोऽयं स्वतन्त्रताश्रिया सुशोभितो जातः । रात्रौ दीपमालिकाभिः गृहाणि सुसज्जितानि । सर्वैः राष्ट्रध्वजवन्दना विहिता, सङ्कल्पश्च कृतः यदस्य राष्ट्रध्वजस्य कदाऽपि तिरस्कारम् अवहेलनां च वयं न कुर्महे, इति । आकाशवाणीतः सर्वत्र समाचारप्रसारणं कारितम् । अयम् उत्सवः सर्वेभ्यः उत्सवेभ्यः अपूर्वसमारोहजनकः समभवत् । यतो हि एतादृक् समारोहः अन्यत्र न कस्मिश्चिदपि धार्मिके उत्सवे भवति । एतेन अनुमीयते अस्माकं देशोऽयं न चिरादेव सुखसमृद्धो भूत्वा सर्वदेशाग्रणीः सम्भविष्यतीति । पर्यन्ते श्रद्धाञ्जलिरूपेण प्राप्तवीरगतीनां देशभक्तानां करकमलेषु स्वकीयं पद्यमिदं सादरं समर्प्यते—

सौख्यं तुच्छमितीव यैर्नरवरैस्त्यक्तं समं दैहिकं
त्यक्तं स्त्रीसुतवित्तसौख्यमखिलं स्वीकृत्य देशव्रतम् ।
रक्तार्घ्येण समर्चिता वसुमती यैर्भारतस्याजिरे
तेषां पुण्यचयैः समृद्धयशसां पुण्याहमेतच्छुभम् ॥



## महाकविः कालिदासः, प्रेयान् कविः

धन्योऽयं कविमूर्धन्यः, स्वकीयकुलकेतनः, सर्वतन्त्रस्वतन्त्रः, सकलशास्त्रसारनिष्यन्दः, काव्यकह्लारकोशविकासविभाकरः, वैदर्भीरीतिसभाजनसभ्यः प्रसादगुणालम्बनः, उपमासीमन्तिनीसीमन्तसिन्दूरदानसरसः, कविताकामिनीकान्तः, काव्यरचनाविक्रमादित्यः, श्रीविक्रमादित्यसभाभास्वरो भास्करः, वाणीवरवत्सः, भूमानुमौलिमुकुटहीरकः,

कविकादम्बकदम्बसमाराधितपादपद्मः, मुकुटालङ्करणरहितोऽपि कवि-सार्वभौमः, प्रकृतिनटीनिर्वचनचतुरः, विद्योत्तमाद्योतितान्तःकरणः, समर्चितकालिकाचरणः, व्यासवाल्मीकिप्रभृतीनामवरजो विश्वविश्रुत-कीर्तिः आसीन्महाकविः कालिदासो नाम।

अथ महाकविरयं कदा कं देशविशेषं स्वजनुषा समलञ्चकार, विषयेऽस्मिन् समेषां गवेषकाणाम् एक एव निष्कर्षः अद्यावधि समुपलभ्यते यत् पुरातनाः कवयः स्वनिर्वचनं नैव कुर्वन्ति स्म इति। एषा परम्परा सर्वत्र नेत्रपथातिथी बोभवीति। यतो हि दिगन्तविश्रुतयशोभरैर्विनताः सर्वथा निःस्पृहाश्च ते कथङ्कारम् आत्मपरिचयप्रदाने बद्धादराः सम्भवेयुः। तथापि पाठकानां सामाजिकानां गवेषकाणाञ्च पिपृच्छा भवति बलवती यया प्रेरितास्ते एतादृगैतिहासिकान् विषयान् कौतूहलेन गवेषयन्ति। गवेषणायाः सिद्धान्ताः प्रकाराणि च विभिन्नानि दृश्यन्ते। अलं तेषां चर्चया। यद्यपि कालिदासत्रयीति समालोचकपरम्परया अवबुध्यते तथापि संस्कृतसाहितीपरिचितस्वान्तानां मनःसु स अन्यतमः कालिदासः, यदीयं काव्यत्रयं नाटकत्रयञ्च जगन्मनो मोहयति। आवर्जयति च हठात् पाश्चात्यविदुषामपि मनांसि। स एव कालिदासः अस्माकं वर्ण्य-विषयः प्रेयान् कविश्च।

**कालिदासस्य स्थितिकालः**—अभारतीया भारतीया वा कविवरमिमं नवीनतमं प्राचीनतमं वा कल्पयन्तु किन्तु अस्य कृतिभिः एतस्य स्थायि यशः न मनाग् ह्रसति। अमुष्य कालविषये प्राधान्येन विदुषां मतत्रयमुपलभ्यते। १—तत्र प्रथमं ख्रिष्टाब्दतः पूर्वं प्रथमशताब्द्याम्। २—द्वितीयं ख्रिष्टाब्दतः पश्चात् पञ्चशताब्द्याम्। ३—तृतीयं ख्रिष्टाब्दतः पश्चात् षष्ठशताब्द्याम्।

१—प्रथममतस्य समर्थकाः प्रायः सर्वेऽपि विद्वांसः सन्ति। तेषां कथनमिदमस्ति यत् कालिदासः राज्ञो विक्रमादित्यस्य नवरत्नेषु आसीदन्यतमः। ई० पूर्वे ५७ वर्षे विक्रमसंवतः प्रारम्भो जातः। अन्तःसाक्ष्यसाहाय्यमवलम्ब्यापि मतमिदं पुष्टतां याति। यथा-मालविकाग्निमित्रस्य कथांशेन परिज्ञायते यत् कालिदासः शुङ्गवंशस्येतिहासाभिज्ञ इति। कालिदासस्य काव्यरचनाप्रणाली सुतरां स्वाभाविकी सत्यपि महाभाष्य-

मनुकरोति। प्रवृत्तिरियं ख्रिष्टीयशताब्दीतः त्रिशद्वर्षपूर्वतः प्रचलन्ती ख्रिष्टीयवत्सरस्य प्रारम्भिककालं यावत् परिलक्ष्यते।

२—द्वितीयमतस्य समर्थकाः पाश्चात्या भारतीया गवेषका अपि सन्ति। एतेषां मतदिदं यत् गुप्तकालः भारतीयसाहित्यस्य स्वर्णयुगं आसीत्। द्वितीयचन्द्रगुप्तः विक्रमादित्येति सम्मानोपाधिं धारयति स्म, अनेनैव शकाः पराजिताः। अश्वघोषस्याऽपि पर्याप्तः प्रभावः कालिदासस्य काव्येषु वर्तते। अतोऽयं गुप्तकालिक इति।

३—तृतीयमतस्य प्रवर्तकः 'फर्गुसन' महोदय आसीत्। एतस्य कथनमस्ति यत् ५४४ ख्रिष्टाब्दे विक्रमादित्यपदलाञ्छनेन केनापि राज्ञा हूणा विजिता। एतदीयविजयोल्लासे स्वकीयसंवत् स्थापितः। मतमिदम् 'मैक्समूलरः' अपि स्वीकरोति। डॉ० हार्नली महोदयः कथयति यत् महाकवेः कालिदासस्य आश्रयदाता श्रीमान् यशोधर्मनृपतिः षष्ठशताब्द्याम् आसीत्। अनेन कविना तस्य यात्रावर्णनव्याजेन रघोर्दिग्विजययात्रा वर्णितेति।

रचनाशैली—कालिदासः भारतीयसंस्कृतेः प्रतिनिधिः कविरिति नैव तिरोहितं सुधीभिः। अस्य रचनाः चतुर्वर्गप्रदानसाधनस्वरूपा इत्यपि स्वीकृतं सरसाऽन्तःकरणैः सङ्ख्यावद्भिः। अयं महाकविः वैदर्भीरीतेः सम्राट्, प्रसादगुणपरिपूर्णः, अनुपमोपमाप्रयोगप्रजापतिः, प्रकृतिचित्रणचित्रकारः व्यञ्जनाव्यञ्जितशास्त्रकलेवरः, अभिनवकल्पनाकुशलः, अन्यतमः काव्यशिल्पी विराजते तराम्।

अस्य चत्वारिंशत् सङ्ख्यातोऽपि अधिकाः कृतयः समुपलभ्यन्ते तास्वपि काश्चन प्रसिद्धाः रचना इहोपन्यस्यन्ते—रघुवंशमहाकाव्यम्, कुमारसम्भवकाव्यम्, मेघदूतकाव्यम्, ऋतुसंहारकाव्यम्। मालविकाग्निमित्रनाटकम् विक्रमोर्वशीयनाटकम् अभिज्ञानशाकुन्तनाटकञ्च। एतदतिरिक्तानां नामानि-कुन्तलेश्वरदौत्यकाव्यम्, राक्षसकाव्यम्, दुर्घटकाव्यम्, नलोदयकाव्यम्, वृन्दावनकाव्यम्, विद्वद्विनोदकाव्यम्, श्रुतबोधः, पुष्पवाणविलासः नवरत्नमाला, ज्योतिर्विदाभरणम्।

स्तोत्राणि—कालीस्तोत्रम्, गङ्गाष्टम्, चण्डिकादण्डकम्, श्यामलादण्डकम्, मकरन्दस्तवः, अम्बास्तवः, लक्ष्मीस्तवः, लघुस्तवः, कल्याणस्तवः, शृङ्गारतिलकप्रभृतीनि च।